श्री भक्तामर मंडल विधान

– राजमल पवैया

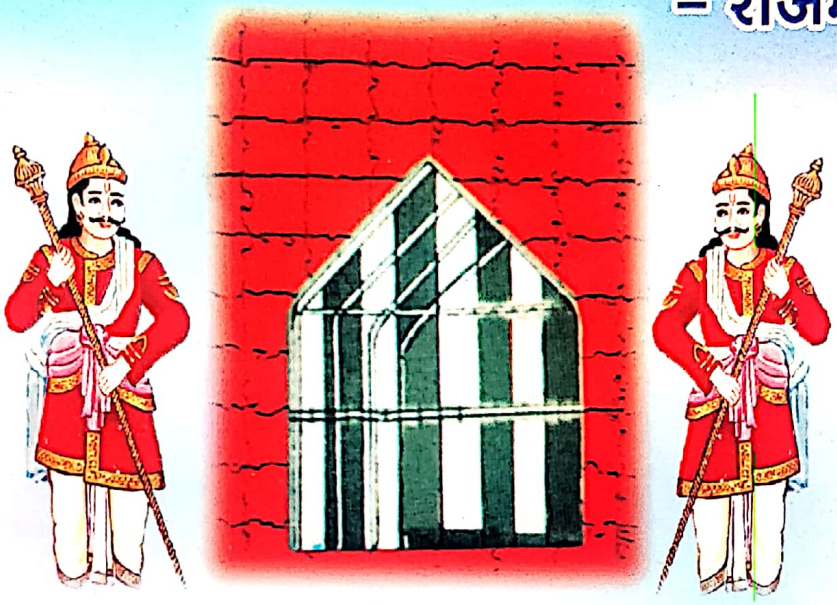

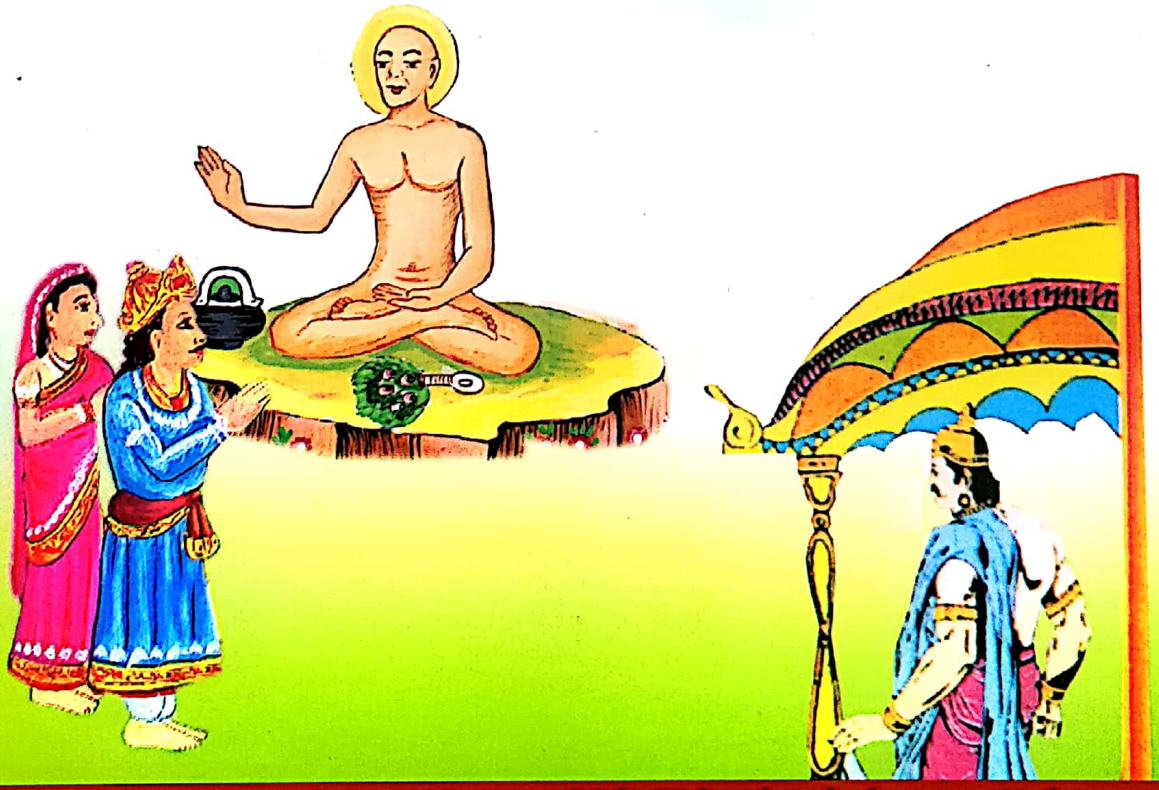

राजा भोज झरोखे में खड़े होकर आश्चर्य व्यक्त कर रहे हैं कि मैंने जिन वीतरागी मुनिराज मानतुंग जी को जेल में बन्द कर दिया था वे मुनिराज जेल के बाहर शिला पर आकर कैसे विराजमान हो गये हैं, अवश्य कोई अद्भुत घट्ना हुई है। राजा शीघ्र महल से नीचे उतरकर उनके आगे नतमस्तक होते हैं।

Scanned with CamScanner

श्री भक्तामर मण्डल विधान

मंगलाचरण

(गाथा)

तवसिद्धे णयसिद्धे संयमसिद्धे चरित्तसिद्धेय।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिद्धा णमंसामि।।

(वसंततिलका)

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-
वालम्बनं भव-जले पततां जनानाम्।।१।।

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठ गतामजस्रं,
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः-।।४८।।

(अनुष्टुप)

मंगलं सिद्ध परमेष्ठी मंगलं तीर्थंकरं।
मंगलं शुद्ध चैतन्यं आत्मधर्मोऽस्तु मंगलं।।
मंगलं आदिनाथाय प्रथमजिन-तीर्थंकरं।
मंगलं ज्ञान गुणधारी मंगलं विश्वेश्वरम्।

(दोहा)

जयति पंच परमेष्ठी, जिनप्रतिमा जिनधाम।
जय जगदम्बे दिव्यध्वनि, श्री जिनधर्म प्रणाम।।
वृषभादिक चौबीस जिन, वन्दूँ मन-वच-काय।
तीर्थंकर उपदेश ही, उत्तम शिव सुखदाय।।

Scanned with CamScanner

(गीतिका)

मानतुङ्ग महान मंगल मंगलं भक्तामरम्।
मंत्र-तंत्र विहीन संस्तुति ज्ञानदायक मंगलं।।
प्रथम सर्वोपरि जिनेश्वर स्व-पर-ज्ञाता मंगलं।
विश्व को कल्याणकारी शाश्वतं मंगलमयम्।।

त्रैलोक्यपतिशिवसौख्यदाता सकलभवभयनाशनम्।
ज्ञानवैभव के धनी प्रभु शुद्ध मनभावन परम्।।
नाम प्रभु के हैं अनंतानंत अति सुखदायकम्।
चतुर्गति पीड़ा विनाशक महाप्रभु मंगलमयम्।।

भक्त अमरों की कहानी अब पुरानी पड़ गई।
देखते ही आपको निजबुद्धि निज में जुड़ गई।।
ज्ञान का महात्म्य पाया आपके दर्शन हुये।
काल-लब्धि स्वयं आकर भक्ति मणि उर जड़ गई।।

।।पुष्पाजलिं क्षिपामि।।

पीठिका

(दोहा)

भक्तामर रचना हुई धारा नगरी मध्य।
मानतुङ्ग आचार्य ने रचना की यह भव्य।।
भक्ति मुख्य इस काव्य में गौण तत्त्व-उपदेश।
जिसकी जैसी योग्यता करता ग्रहण विशेष।।
नृपति भोज के समय में रचना हुई महान।
भोले जीवों ने तजा मिथ्या-मोह अजान।।
भ्रमण चतुर्गति नाश का इसमें श्रेष्ठ उपाय।
लौकिक सुख भी मार्ग में मिलता है सुखदाय।।

Scanned with CamScanner

लौकिक सुख के जाल में जो उलझे हैं जीव।
दुख अनंत वे पाएंगे बिना विवेक सदीव।।
चमत्कार लौकिक जुड़े भक्तामर के संग।
जैनाभास प्रचार का यह है खोटा ढंग।।
जैनधर्म की मान्यता वीतराग पथ एक।
मुक्ति प्रदाता है यही त्यागो राग कुटेव।।
मुक्तिमार्ग पर में नहीं जो बाहर में जाये।
मुक्तिमार्ग सच्चा वही जो निजात्म में आये।।
रत्नत्रय की भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है भक्ति।
इससे ही मिलती सदा मुक्ति प्राप्ति की शक्ति।।
ध्रुव त्रैकालिक आत्मा पावन परम महान।
ये ही हैं परमात्मा ये ही हैं भगवान।।
आत्म तत्त्व ही श्रेष्ठ है शेष सर्व निस्सार।
इसी तत्त्व का आश्रय ले होता भव पार।।
परम दिगम्बर मुनि दशा है सर्वोच्च महान।
बाह्यान्तर निर्ग्रंथ ही पाते पद निर्वाण।।
श्री जिनेन्द्र की भक्ति ही इस नर भव में सार।
सर्व पाप-मल क्षय करे ले जावे भव पार।।
आत्म ध्यान ही ध्यान है शेष ध्यान सब व्यर्थ।
भव-रोगों के नाश की यह औषधि अव्यर्थ।।
सप्त तत्त्व नौ पदार्थ अरु छह द्रव्यों का ज्ञान।
इनमें सबसे श्रेष्ठ है आत्म-तत्त्व बलवान।।
यदि सुख का उद्देश्य है तो हो निज का ज्ञान।
इसी ज्ञान से मिलेगा उत्तम पद निर्वाण।।

Scanned with CamScanner

भक्ति काव्य भक्तामर का यह है श्रेष्ठ विधान।
आत्म तत्त्व की प्राप्ति का है उपाय बलवान।।
मानतुङ्ग की कृपा से हो निज का कल्याण।
इसीलिए प्रभु अब करूं पावन परम विधान।।
जिन्हें आत्म कल्याण की सुरुचि जगी उर माहिं।
भक्तामर को भोग हित वे पढ़ते हैं नाहिं।।
भक्तामर का पाठ तो है शिव-सुख के हेतु।
इसे भूल भव सुख कहां ज्यों बिनु मस्तक केतु।।
कुगति विनाशक काव्य यह भक्तामर अनमोल।
निज स्वभाव की प्राप्ति हित अब तो हृदय टटोल।।
राग-द्वेष के नाश की इसमें शक्ति अपार।
जो प्रगटाते शक्ति यह हो जाते भव पार।।

(अर्द्ध-कुण्डलिया)

मानतुङ्ग मुनिवर हुए पूर्व सहस इक वर्ष।
ऋषभदेव संस्तुति रची उर में छाया हर्ष।।

उर में छाया हर्ष प्रमत्त दशा में रहकर।
तत्पश्चात् दशा पायी अप्रमत्त हितकर।।

प्रति अन्तर-मुहूर्त्त में मुनि ऐसा करते थे।
भक्तामर पढ़ अशुभभाव पूरे हरते थे।।

मैं भी अपने पाप हरूं प्रभु भक्तामर पढ़।
मोक्षमार्ग मैं पाऊं स्वामी अब आगे बढ़।।

।।पुष्पांजलिं क्षिपामि।।

Scanned with CamScanner

समुच्चय पूजन

स्थापना

(ताटंक)

भक्त अमर बनने की इच्छा प्रभु अनादि से प्रतिपल थी।
चक्रवर्ती इन्द्रादिक पद की आकांक्षा भी पल-पल थी।।
आज आपके दर्शन पाए तत्क्षण निज का भान हुआ।
भूल गया भव सुख की वांछा जो अंतर में कल तक थी।।

ना चाहूँ कल्पादिक ग्रीवक अनुदिश ना पंचोत्तर सुख।
ये सब ही शिवसुख के बाधक हैं सर्वथा नाथ भवदुख।।
चहुँगति भ्रमण किया है मैंने सदा विभावों से अब तक।
अब तो पाऊं ध्रौव्य-त्रिकाली-शाश्वत आत्मोत्थ निजसुख।।

इसीलिए करता हूं विनयित यह विधान प्रभु भक्तामर।
इसके लिए मैं आत्मीयसुख का पाऊं स्वामी निर्झर।।
भक्ति जिनेन्द्र जगी अन्तर में भक्तामर के पाते ही।
रत्नत्रय की भक्ति प्राप्त हो यह निश्चय उर आते ही।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्

(गीतिका)

अमृत जल को त्याग कर विषमयी जल मैंने पिया।
रोग त्रय से ग्रसित होकर चार गति में ही जिया।।
भक्त अमरों की कथा भी अब मुझे भाती नहीं।
शरण पायी आपको तो भव-व्यथा आती नहीं।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

आत्म चंदन चरु तजा भव वृक्ष छाया में जिया।
ताप भव से दुखी हो परद्रव्य का आश्रय लिया।।भक्त.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

Scanned with CamScanner

भाव अक्षत छोड़कर क्षत भाव ही संचय किए।
शुद्धनय को त्याग कर संचित सदा दुर्नय किए।।
भक्त अमरों की कथा भी अब मुझे भाती नहीं।
शरण पायी आपकी तो भव-व्यथा आती नहीं।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

भाव पुष्प महान छोड़े काम की पीड़ा बढ़ी।
इसलिए अब तक न मेरी आत्मा ऊपर चढ़ी।।भक्त.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंशनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

भावना के सुचरु तज दुर्भावना के चरु लिए।
भूख से व्याकुल रहा मैं पाप ही संचित किए।।भक्त.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

दीप समकित के बुझाए मोह की बाती जला।
इसलिए पायी न मैंने ज्ञान की पावन कला।।भक्त.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

ध्यान धूप न कभी पायी रहा में दुर्ध्यानरत।
शुद्धज्ञान स्वरूप मेरा हो गया सम्पूर्ण क्षत।।भक्त.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

मोक्ष फल खाता कहां से जबकि भवफल खा रहा।
विभावी भव भाव में ही आज तक मैं तो बहा।।भक्त.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

अर्घ्य शुद्ध स्वभाववाले कहां से लाता प्रभो।
विभावों के भवन में निज सौख्य क्यों आता विभो।।भक्त.।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

Scanned with CamScanner

महाऽर्घ्य

(मानव)

भक्तामर श्रवण करूँ मैं अपनी निजात्मा के हित।
जिनवर की भक्ति करूँ मैं रत्नत्रय पाऊँ निश्चित।।
मैं पंच महाव्रत धारूँ हिंसादि भाव निरवारूँ।
ईर्यादि समितियाँ पाँचों सम्यक् प्रकार उर धारूँ।।

मन-वच-काया त्रिगुप्ति का पालन हो निरतिचार प्रभु।
बस यही त्रयोदश विधि का सम्यक् चारित्र धरूँ विभु।।
इसमें भी प्रभु वसु प्रवचन मातृका पूर्ण हों उर में।
फिर बिना रुके जाऊँगा हे स्वामी मैं शिवपुर में।।

भक्तामर पढ़ते ही प्रभु सातों भय क्षय हो जाते।
उर स्व-पर विवेक जागता ज्ञानाब्धि सतत् लहराते।।
फिर भेद ज्ञान-विज्ञानी समकित को सादर लाते।
समकित संग ज्ञान आचरण स्वयमेव बरात सजाते।।

वर चेतन मैं बन जाऊँ पाँचों इन्द्रिय मन वश कर।
सन्मार्ग स्वतः पाऊँगा काषायिक भाव विजय कर।।
जप-तप-व्रत संयम इसके पीछे-पीछे चलते हैं।
भव पर्वत इस चेतन के द्वारा पल में गलते हैं।।

(दोहा)

देखा चेतनराज तो जागा हर्ष अपार।
अब तो भाव विभोर हूँ मैं चैतन्य कुमार।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये महाऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

Scanned with CamScanner

अर्घ्यावली

(वसंततिलका)

(१)

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-
वालम्बनं भव-जले पततां जनानाम्॥1॥

(ताटंक)

भक्तसुरों के मुकुट सुमणियुत पद में शोभा पाते हैं।
पाप बंध सब गल जाते हैं पुण्य सु-तरु फल आते हैं।।
प्रथम युगादि तीर्थंकर प्रभु ऋषभदेव को करूँ नमन।
भव-सागर तारक हे जिनवर! बार-बार तुमको वन्दन।।
अजर-अमर-अविकल अविनाशी आदिनाथ को करूँ प्रणाम।
त्रिभुवनपति परमेश्वर प्रभु को वन्दन मेरा आठों याम।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री सनातनस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१।।

अन्वयार्थ-(भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि प्रभाणाम् उद्योतकम्) भक्तिवन्त देवताओं के नम्रीभूत मुकुटों की मणियों को **(पदनखों की कान्ति से)** जगमगाने वाले-प्रकाशित करने वाले, **(दलित-पाप-तमो-वितानम्)** पापरूपी अन्धकार के समूह का नाश करने वाले, **(भव-जले पततां जनानाम् आलम्बनम्)** संसार-सागर में गिरे हुए-पड़े हुए जगतजनों के आधारभूत, **(युगादौ प्रथमं जिनेन्द्रम्)** युग के आदि में-चतुर्थकाल के प्रारम्भ में हुए प्रथम जिनेन्द्र आदिनाथ भगवान के **(जिनपाद युगम्)** चरण युगल को **(सम्यक् प्रणम्य)** भली-भांति भक्तिपूर्वक प्रणाम करके, नतमस्तक होता हूं।

Scanned with CamScanner

(२)

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधा-
दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय - चित्त - हरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥2॥

द्वादशांगयुत तत्त्व बोध से जिसका उर अंतर भरपूर।
ऐसा इन्द्र सदा प्रभु की संस्तुति करता विभ्रम कर दूर।।
क्यों आश्चर्य करे कोई भी संस्तुति करता इन्द्र प्रधान।
चरम शरीरी ज्ञान शरीरी श्री अरहंत ऋषभ भगवान।।

प्रभु चरणों की शरण प्राप्त कर हो जाता प्राणी भगवान।
बिना परिश्रम ही हो जाते अष्ट कर्म सारे अवसान।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित-प्रगटाऊं निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं परमज्ञानस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२।।

अन्वयार्थ-**(सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधात्)** समस्त शास्त्रों के तत्त्वज्ञान से **(उद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः)** जिन्हें बुद्धिकौशल की प्राप्ति हुई है-ऐसे देवेन्द्रों के द्वारा **(जगत्त्रितय-चित्त-हरैः उदारैः स्तोत्रैः)** तीनों लोकों के चित्त को हरण करने वाले, महान गम्भीर आशयवाले स्तोत्रों के द्वारा **(यः संस्तुतः)** जिनकी स्तुति की है, **(तं प्रथमं जिनेन्द्रम्)** उन्हीं प्रथम जिनेन्द्रदेव का **(अहं अपि स्तोष्ये)** मैं भी स्तवन करूंगा।

Scanned with CamScanner

(३)

बुद्धया विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ,
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगत-त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल-संस्थितमिंदु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम॥3॥

मैं भी स्तुति करता हूँ प्रभु अल्पबुद्धि हूँ ज्ञान नहीं।
विज्ञजनों से पूजित स्वामी मुझको तो कुछ भान नहीं।।
जैसे बालक जलसंस्थित शशि पाने की इच्छा करता।
मेरा मन भी तव दर्शन की ही दृढ़ प्रबलेच्छा करता।।

संस्तुतियाँ अनगिनती की हैं भावशून्य सब ही बेकार।
भावसहित यदि एक मात्र हो तो हो जाता बेड़ा पार।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं चिदानन्दस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३।।

अन्वयार्थ- (विबुधार्चित पादपीठ !) सुरेन्द्रों द्वारा पूजित है पादपीठ या सिंहासन जिनका-ऐसे हे जिनेश्वरदेव! **(बुद्धया विनापि)** बुद्धिविहीन होने पर भी **(अहं स्तोतुं समुद्यत-मतिः)** मैं (आपकी) स्तुति करने के लिए तत्पर हुआ हूँ **(इति मम्-विगत-त्रपः)**-यह मेरी निर्लज्जता या धृष्टता ही है। **(जल-संस्थितं इन्दु बिम्बम्)** जल में पड़े हुए चन्द्र के प्रतिबिम्ब को **(बालं विहाय अन्यः कः जनः सहसा गृहीतुं इच्छति)** नादान बालक के सिवाय अन्य कौन ग्रहण करना चाहेगा, अर्थात् कोई भी समझदार व्यक्ति चन्द्र-प्रतिबिम्ब को पकड़ने की इच्छा नहीं करेगा।

Scanned with CamScanner

(४)

वक्तुं गुणान् गुण-समुद्र! शशाङ्क-कान्तान्,
कस्तेक्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्धया?
कल्पान्तकाल - पवनोद्धत - नक्र - चक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्॥4॥

चंद्रकान्तमणि से भी बढ़कर देह आपकी अति सुन्दर।
कोई क्या गुणगान करेगा आप विश्व के ज्येष्ठ प्रवर।।
महाभयंकर मगर-मच्छ से भरा समुद्र अपार अथाह।
कौन पार सकता भुजबल से, पर उर में है अति उत्साह।।

तुम सम पावन नौका को पा प्राणी हो जाते भव पार।
नहीं तनिक भी घबराते हैं उर में बल ले अपरम्पार।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं निर्विकारस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१।।

अन्वयार्थ-(गुण-समुद्र) हे गुण के समुद्र-हे गुणसागर! **(सुर-गुरु-प्रतिमः बुद्धयाऽपि)** बृहस्पति जैसे बुद्धिमान भी **(शशांक-कान्तान् गुणान्)** आपके चन्द्रमा की कान्ति के समान निर्मल गुणों को **(वक्तुम् क्षमः)** कहने में-वर्णन करने में समर्थ नहीं है **(अन्यः कः ते क्षमः)** तो फिर अन्य किसकी शक्ति है, जो आपके गुणों का वर्णन कर सके? **(कल्पान्तकाल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रम्)** प्रलयकाल के तेज नक्र-चक्रम् अर्थात् तूफानी थपेड़ों से उछल रहे हैं, घड़ियाल आदि भयंकर जलजन्तु जिसमें-ऐसे **(अम्बुनिधिं)** समुद्र को **(भुजाभ्याम् तरीतुं)** दोनों भुजाओं से तैरने में **(कः अलम्)** कौन समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं।

Scanned with CamScanner

(५)

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान् मुनीश!
कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम्॥५॥

अपने मृग छौने की रक्षा के हित मृगी सजग होकर।
मृगपति सिंह सामने जाती सहज नेह प्रेरित होकर।।
मैं भी प्रभु तव सन्मुख आकर संस्तुति करता बिना झिझक।
ध्यान नहीं आगे पीछे का ध्येय एक निज हित सम्यक्।।

जो निज का उद्धार चाहते वे रत्नत्रय भक्ति करें।
अपने रक्षक आप स्वयं बन अभ्यंतर ध्रुव शक्ति भरें।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं निर्भयस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२।।

अन्यवार्थ-(तथापि) फिर भी **(मुनीश !)** हे मुनीश्वर! (ऋषभदेव) **(सः)** वही शक्तिहीन **(अहम्)** मैं (मानतुङ्ग) **(विगत-शक्तिः-अपि)** सामर्थ्यहीन होते हुए भी **(भक्तिवशात्)** भक्तिवश **(तवस्तवं कर्तुं प्रवृतः)** आपके गुणों का कीर्तन करने के लिए तत्पर हुआ हूँ। जैसे **(मृगी प्रीत्यात्म-वीर्यम्-अविचार्य)** हिरणी प्रीतिवश अपनी शक्ति को बिना विचारे ही **(निज-शिशोः परिपालनार्थम्)** अपने बच्चे की रक्षा करने के लिए **(किं मृगेन्द्रं न अभ्येति)** क्या सिंह का सामना नहीं करती है? अर्थात् करती ही है। उसी प्रकार मैं भी आपकी भक्ति में प्रवृत्त हुआ हूँ।

Scanned with CamScanner

(६)

अल्प-श्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैक-हेतु॥6॥

मैं अल्पज्ञ विज्ञजन मेरी हँसी करेंगे निश्चित ही।
पर मुझको इसकी ना चिन्ता हुआ भक्ति में प्रमुदित ही।।
मधु ऋतु में ज्यों कोयल गाती आम्रवृक्ष की डाली पर।
मैं भी प्रभु वाचाल हुआ हूँ तुम छवि महा निराली पर।।

नरभव में ही समकित की ऋतु आती है समकित ले लूँ।
ज्ञान भावना से अपने निज बंद नयन निर्भय खोलूँ।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं पूर्णबोधस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।६।।

अन्वयार्थ-(अल्प-श्रुतम्) मैं अल्पश्रुत का अभ्यासी, अल्पज्ञानी हूँ-शास्त्रों का विशेष जानकार नहीं हूँ (अतः) **(श्रुतवताम्)** विद्वानों द्वारा **(परिहासधाम्)** हँसी का पात्र बनूँगा (तथापि) **(माम् त्वद्भक्तिः एव बलात् मुखरी कुरुते)** मुझको आपकी भक्ति ही बलपूर्वक वाचाल कर रही है, भक्ति करने के लिए विवश कर रही है। **(किल)** निश्चय ही **(यत् कोकिलः)** जो कोयल **(मधौ मधुरं विरौति)** बसंत-ऋतु में मधुर स्वर में बोलती है, कूजती है या कुहुकती है **(तत्-चाम्र-चारु-कलिका)** उसमें सुन्दर आम्र-वृक्षों के बौर **(मंजरी)** का **(निकरैक-हेतुः)** समूह ही एक मात्र हेतु है-कारण है। (अन्यथा वह कोयल बंसत के सिवा अन्य ऋतु में क्यों नहीं बोलती) जैसे कोयल को आम्रमंजरी मधुर बोलने के लिए प्रेरणा केन्द्र है, वैसे ही मुझे आपकी भक्ति ही स्तुति करने के लिए प्रेरित करती है।

Scanned with CamScanner

(७)

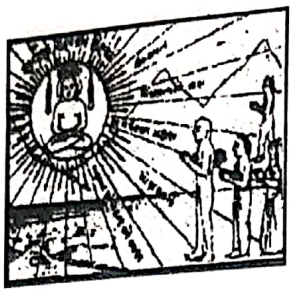

त्वत्संस्तवेन भव - सन्तति - सन्निबद्धं,
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीर-भाजाम्।
आक्रान्त-लोकमलि-नीलमशेषमाशु,
सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वरमन्धकारम्॥7॥

श्री जिनेन्द्र की संस्तुति करते ही क्षय हो जाते सब पाप।
कोई अभी न टिकने पाता क्षय होता भव का संताप।।
प्रातः दिव्य प्रकाश सूर्य उगते ही यह जग पाता है।
कृष्ण भ्रमर सम तम रजनी का सब विनष्ट हो जाता है।।

मरण काल सबका ही आता जब होता है द्रव्य-मरण।
किन्तु महादुखदायी है वह जो होता है भाव-मरण।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानप्रकाशस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।७।।

अन्वयार्थ-(त्वत्संस्तवेन) आपके स्तवन से **(शरीर-भाजाम्)** देहधारी-संसारी प्राणियों का **(भव-सन्तति-सन्निबद्धं पापम्)** भव-भवान्तरों से बँधा हुआ पापकर्म **(क्षणात् क्षयं उपैति)** क्षणभर में विनाश को प्राप्त हो जाता है। जैसे कि **(आक्रान्त-लोकं)** समस्त लोक में फैला हुआ **(अलि-नीलम्)** भ्रमर के समान काला-घना **(शार्वरं अन्धकारम्)** रात्रि का अन्धकार **(अशेषं आशु)** सम्पूर्ण रूप से शीघ्र ही **(सूर्यांशु-भिन्नं इव)** सूर्य की किरणों से छिन्न-भिन्न हो जाता है।

Scanned with CamScanner

(८)

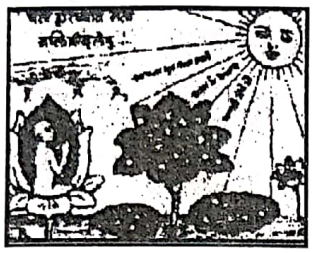

मत्वेति नाथ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु
मुक्ता-फलद्युति-मुपैति ननूद-बिन्दुः॥8॥

बुद्धि हीन मैं भाव पूर्वक संस्तुति करता विनयित हो।
आप स्वरूप हृदय में मेरे तव प्रभाव उर निश्चित हो।।
कमल पत्र पर नीर बिन्दु मोती सी आभा पाते हैं।
असली मोती से बढ़कर वे प्रभा स्वयं ही पाते हैं।।

आत्मबुद्धि जिनकी होती है वे पर से अलिप्त रहते।
शुद्ध ज्ञान गंगोत्री पाकर उसकी धारा में बहते।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं निर्मलज्ञानस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।८।।

अन्वयार्थ-(नाथ!) हे नाथ? हे स्वामिन्! **(इति मत्वा)** ऐसा मानकर कि 'प्राणियों के अनेक जन्मों में उपार्जित किये हुए पाप-कर्म आपके सम्यक् स्तवन से तत्काल ही सम्पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं **(तनु-धियापि)** मन्दबुद्धि होने पर भी **(मया इंद तव संस्तवनम्)** मेरे द्वारा यह आपका स्तवन **(आरभ्ते)** प्रारम्भ किया जा रहा है। **(ननु)** निश्चय ही (यह स्तवन) **(तव प्रभावात्)** आपके प्रभाव से **(सतां चेतः हरिष्यति)** सत्पुरुषों के चित्त को आकर्षित करेगा। (जिस प्रकार) **(उद-बिन्दुः)** जल की बूँद **(नलिनी-दलेषु)** कमलिनी के पत्तों पर **(मुक्ता-फल-द्युतिम्)** मोती की कान्ति को **(उपैति)** प्राप्त करती है।

Scanned with CamScanner

(९)

आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं,
त्वत् सङ्कथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि॥

जिन स्तोत्र महा-महिमामय देता है सबको संतोष।
किन्तु आपकी पुण्य कथा ही हर लेती है सारे दोष।।
सूर्य-किरण की प्रभा कमल दल सदा प्रफुल्लित करती है।
परमौदारिक देह आपकी जगती के दुख हरती है।।

जिनवर की संस्तुति करने का मिलता जिन्हें महा सौभाग्य।
वे ही शिवपथ को पाते हैं क्षय हो जाता है दुर्भाग्य।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं निर्दोषस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१।।

अन्वयार्थ-हे नाथ! **(तव)** आपका **(अस्त-समस्त-दोषम्)** निर्दोष-समस्त दोषों के रहित, पवित्र **(स्तवनम्)** गुण-कीर्तन **(दूरे-आस्ताम्)** तो दूर की बात है। **(त्वत्संकथापि)** आपकी सद्वार्ता-चर्चा-मात्र से **(जगतां दुरतानि हन्ति)** प्राणियों के पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसे कि **(सहस्रकिरणः)** सूर्य **(दूरे अस्ति)** तो दूर रहे **(तस्य प्रभा एव)** उसकी किरणों की कान्ति ही **(पद्माकरेषु)** सरोवर में **(जलजानि)** कमलों को **(विकासभाञ्जि)** प्रफुल्लित **(कुरुते)** कर देती है।

Scanned with CamScanner

(१०)

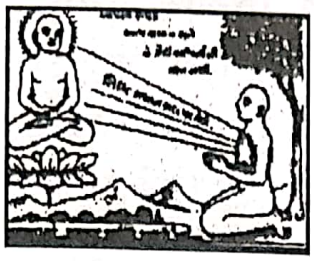

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण! भूत-नाथ!,
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति॥10॥

त्रिभुवन तिलक शीर्ष चूड़ामणि गुरुओं के गुरु आप प्रधान।
भक्तों को निज सम करते हो इसमें क्या आश्चर्य महान।।
छोटा सा धनपति भी अपने आश्रित को निज सम करता।
नहीं करे तो निर्धन प्राणी क्यों उसकी सेवा करता।।

तुम प्रभु सबको मुक्तिमार्ग का देते हो संदेश महान।
यह संदेश प्राप्त कर प्राणी पा लेते हैं पद निर्वाण।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं अनन्तगुणस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१०।।

अन्वयार्थ-(भुवन-भूषण!) हे विश्व के आभूषण स्वरूप परमात्मन्! हे त्रैलोक्य तिलक! **(भूत-नाथ!)** हे जगन्नाथ! **(भूतैर्गुणैः)** विद्यमान विपुल एवं वास्तविक गुणों के द्वारा **(भवन्तम्)** आपको **(अभिष्टुवन्तः)** भजने वाले भव्य पुरुष **(भुवि)** पृथ्वी पर **(भवतः)** आपके **(तुल्या)** सदृश या समान **(भवन्ति)** हो जाते हैं **(इति अति अद्भुंत न)** यह बहुत आश्चर्यजनक नहीं है। **(वा)** अथवा **(ननु)** निश्चय से **(तेन)** उस स्वामी से **(किम्)** क्या **(प्रयोजनं अस्ति)** लाभ है? **(यः)** जो स्वामी **(इह)** इस लोक में (आश्रितम्) अपने आधीन सेवक को **(भूत्या)** विभूति से, धन-सम्पति-ऐश्वर्य से **(आत्मसमम्)** अपने समान **(न)** नहीं (करोति) करता है।

Scanned with CamScanner

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष-विलोकनीयम्,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेतु॥1॥

दर्शनीय हे निर्निमेष प्रभु तुम दर्शन से हुआ पवित्र।
नेत्र अन्य पर कभी न जाते तुम्हें देखकर हुए न तृप्त।।
क्षीरोदधि का मिष्ट नीर जो पी लेता है पहली बार।
कालोदधि के खारे जल को कैसे पिये करो सुविचार।।

नेत्रों में टिमकार न होती ऐसे प्रभु अतिशयधारी।
सबको आप समान निरखते केवलज्ञान लब्धिधारी।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानचक्षुस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।११।।

अन्वयार्थ-(हे प्रभु!) **(अनिमेष-विलोकनीयं)** बिना पलक झुकाये निरन्तर दर्शन करने योग्य **(भवन्तं दृष्ट्वा)** आपको देखकर **(जनस्य चक्षुः)** मनुष्य के नेत्र **(अन्यत्र तोषम्)** और कहीं पर संतोष **(न उपयाति)** प्राप्त नहीं करते **(दुग्ध-सिन्धोः शशिकर-द्युति पयः पीत्वा)** चन्द्रमा की किरणों के समान क्षीरसागर का उज्ज्वल जल पीकर **(कः जल-निधेः क्षारं जलं असितुं इच्छेत्)** ऐसा कौन पुरुष होगा जो समुद्र के खारे पानी को पीना चाहेगा?

Scanned with CamScanner

(१२)

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक ललाम-भूत!।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्याम्,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति॥12॥

जो परमाणु जगत में शुभ थे उनसे निर्मित प्रभु की देह।
परम शान्त सुन्दर छविधारी जागा तुमसे सघन सनेह।।
त्रिलोकाग्र के शीर्ष आप हो उसके आभूषण अनुरूप।
आप समान न रूप किसी का इस जगती में कहीं अनूप।।

सभी गुणों ने एक साथ प्रभु तुमको किया सतत् वन्दन।
हे त्रिभुवन के नाथ! आपका भक्त कर रहे अभिनंदन।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं परमशान्तस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१२।।

अन्वयार्थ-(त्रिभुवनैक-ललाम-भूत!) हे! त्रैलोक्य शिरोमणि! **(यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिः)** जिन प्रशात रस से युक्त सुन्दर राग-रहित परमाणुओं से, **(त्वं निर्मापितः)** आपका परम औदारिक शरीर निर्मित हुआ है, **(ते अणवः अपि खलु तावन्त एव)** वे परमाणु भी वस्तुतः उतने ही **(आसन्)** थे। **(यतः)** क्योंकि **(पृथिव्यां ते समानम्)** समस्त पृथ्वी तल पर आपके समान **(अपरं रूपं न हि अस्ति)** अन्य किसी का ऐसा सुन्दर रूप निश्चित ही नजर नहीं आता।

Scanned with CamScanner

(१३)

**वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग-नेत्र-हारि,
निःशेष - निर्जित - जगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलंक-मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु-पलाश-कल्पम्॥13॥**

सुर नागेन्द्र नरों के नेत्र सदैव जीतता सुख सुन्दर।
जग की सारी उपमाओं को विजयी करता मुख मनहर।।
चंद्र कलंक सहित अति लघु ज्यों लगता है रवि के आगे।
वह पलाश सम तेज हीन हो जाता दिनकर के आगे।।

कोटि-कोटि रवि शशि भी मिलकर तुव सन्मुख लगते हैं दीन।
उनको भी सन्मार्ग बताते ऐसे स्वामी आप प्रवीण।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं निरुपमस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१३।।

अन्वयार्थ-(सुर-नरोरग-नेत्र-हारि) देव, मनुष्य और भवनवासी नागकुमार जाति के देवेन्द्र **(धरणेन्द्र)** आदि के नेत्रों को हरण करने वाला **(निःशेष-निर्जित-जगत् त्रितयोपमानम्)** सम्पूर्ण रूप से तीनों लोकों के उपमानों को जीतने वाला अर्थात् उपमा रहित **(ते वक्त्रं क्व)** तुम्हारा मुख-मण्डल कहाँ और **(कलंक-मलिनं निशाकरस्य बिम्बं क्व)** कलंक से मलिन चन्द्रमा का बिम्ब कहां? **(यत् वासरे)** जो दिन में **(पाण्डु-पलाश-कल्पं भवति)** जीर्ण-शीर्ण हुए टेसू के पत्र के समान फीका और पीला पड़ जाता है।

Scanned with CamScanner

(१४)

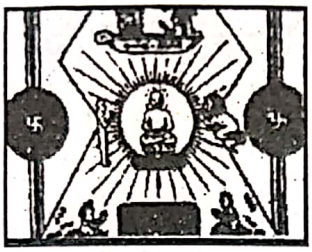

सम्पूर्ण-मण्डल-शशाङ्क-कला-कलाप-शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर नाथमेकम्,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम्॥14॥

शशि सम तुम गुण दिव्य प्रभामय चंद्रकला से अति उत्तम।
त्रिभुवन में तव गुण व्यापे हैं है स्वच्छता सु-परमोत्तम।।
सारी जगती में विचरण करते हैं देते सौख्य अपार।
कौन रोक सकता है उनको उन्हें आपका है आधार।।

गुण अनंतपति ज्ञान दिवाकर परम शुद्ध अति महिमावान।
भक्त आपके पथ पर चलकर कर लेते निज का कल्याण।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं निजपरमेश्वरस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१४।।

अन्वयार्थ-(जगदीश्वर!) हे त्रिलोकी नाथ! **(सम्पूर्ण-मण्डल-शशांक-कला कलाप-शुभ्रा)** पूर्णमासी के चन्द्रमण्डल की कलाओं के सदृश समुज्जवल **(तव गुणाः)** आपके गुण **(त्रिभुवनं लङ्घयन्ति)** तीनों लोकों को उल्लंघन करते हैं, तीनों लोकों में व्याप्त हो रहे हैं, क्योंकि **(ये एकं नाथं संश्रिताः)** जिन्होंने एक, अद्वितीय, त्रिलोकी नाथ का आश्रय लिया है, उन्हें **(यथेष्टं संचरतः कः निवारयति)** स्वेच्छानुसार सर्वत्र विचरण करने से कौन रोक सकता है? कोई भी नहीं। इसी कारण मानों आपके अनन्तगुण त्रिभुवन में सव्रत्र फैल रहे हैं, व्याप्त हो रहे हैं। तात्पर्य यह है कि त्रिलोकीनाथ जिनेश्वरदेव का गुणानुवाद सर्वत्र सदैव होता रहता है तथा उनके द्वारा प्रतिपादित वस्तुस्वरूप सर्वत्र सदैव जयवन्त वर्त रहा है।

Scanned with CamScanner

**चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभिर्
नीतं मनामपि मनो न विकार-मार्गम्।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित्॥15॥**

मदमाती सुरबालाएँ लख आता उर में नहीं विकार।
कौन करे आश्चर्य आप पर आप सदा रहते अविकार।।
प्रलय पवन से मेरु श्रृंग गिर जाते हैं क्या भूतल पर।
हिला नहीं सकता सुमेरु को कोई झंझावात प्रखर।।

अचल अडोल अकंप शाश्वत् स्वचतुष्टय से सज्जित हो।
पर से भिन्न पृथक् सदैव हो निज से प्रभु अविभाजित हो।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं अविकारस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१५।।

अन्वयार्थ-भगवन्! **(यदि ते मनः)** अगर तुम्हारा मन **(त्रिदशाङ्गनाभिः)** देवांगनाओं के द्वारा अर्थात् देवलोक की अप्सराओं द्वारा **(मनाक् अपि)** जरा भी, थोड़ा भी **(विकार-मार्गम्)** बुरे भाव की ओर अर्थात् विकास मार्ग की ओर **(न नीतम्)** नहीं खींचा जा सका **(अत्र किं चित्रम्)** तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? **(चलिताचलेन)** पहाड़ों को चलायमान कर देने वाली **(कल्पान्त-काल-मरुता)** प्रलय काल की पवन द्वारा **(किं-मन्दराद्रि-शिखरम्)** क्या सुमेरु पर्वत की चोटी **(कदाचित् चलितम्)** कभी चलायमान की गई है? **(अपितु न चलितम्)** अर्थात् कभी नहीं।

Scanned with CamScanner

(१६)

निर्धूम - वर्तिरपवर्जित - तैल - पूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानाम्,
दीपोऽपरस्तवमसि नाथ! जगत्प्रकाशः॥16॥

धूम्र तेल बाती के बिन ही तीन लोक लखते स्वामी।
पर्वत शिखर उड़ाने वाली पवन बुझाती ना नामी।।
स्व-पर प्रकाशक आप त्रिकाली दिवस-रात्रि का भेद नहीं।
अनुपमेय दीपक हो प्रभुवर तुम-सा कोई अन्य नहीं।।

लोकालोक पदार्थ द्रव्य-गुण-पर्यायें सब जान रहे।
व्यय-उत्पाद-ध्रौव्य सत् को ही निज अनुभव से मान रहो।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं ज्ञानरत्नदीपस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१६।।

अन्वयार्थ-(नाथ! त्वं निर्धूम-वर्तिः) हे स्वामिन्! आप धुँआ और वाती से रहित **(अपवर्जित-तैल-पूरः)** सम्पूर्णतया तेल से रहित **(कुत्स्नं इदं जगत्त्रयं प्रगटी करोषि)** सम्पूर्ण लोकालोक को प्रकाशित करने वाले **(चलिताचलानं मरुताम्)** पहाड़ों को डावाँ डोल करने वाली हवाओं से भी **(जातु गम्यो न)** कभी भी प्रभावित नहीं होने वाली **(जगत्प्रकाशः अपरः दीपः असि)** विश्व भर में ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाले दीपक हो।

Scanned with CamScanner

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहु-गम्यः
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदर - निरुद्ध - महा - प्रभावः
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र! लोके॥17॥

अस्त नहीं होता जो पल भर राहु उसे क्या ग्रस सकता।
युगपत लोकालोक प्रकाशक ज्ञान कौन प्रभु हर सकता।।
मेघों में भी क्या कुछ बल है जो प्रभाव तव कर दें मंद।
महिमामयी अपूर्व दिवाकर उन्हें न दिखते जो मोहान्ध।।

अनेकान्त के सूर्य आप हैं हे एकान्त पूर्णतः ध्वस्त।
अनेकान्त तरु छाया में आ कोई होता कभी न त्रस्त।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं लोकालोकप्रकाशक श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१७।।

अन्वयार्थ-(मुनीन्द्र! त्वम् सूर्यातिशयि महिमा असि) हे मुनीश्वर! आपकी महिमा सूर्य से अधिक अतिशय वाली है। (क्योंकि) **(त्वम् कदाचित् अस्तं न उपयासि)** आप कभी भी अस्त (अदृश्य) नहीं होते। **(न राहु-गम्यः असि)** राहु नामक ग्रह के द्वारा कभी ग्रसित नहीं होते **(सहसा जगन्ति युगपत् स्पष्टीकरोषि)** तथा एक साथ एक समय में सहजता से तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाले हो, **(न अम्भोधरोदर निरुद्ध-महा-प्रभावः)** आपका महाप्रभाव बादलों के उदर में अवरुद्ध नहीं होता। अतः आपकी उपमा सूर्य से भी नहीं दी जा सकती, सूर्य एक तो उदय होकर अस्त हो जाता है। उसे राहु ग्रस लेता है, सूर्य अपना प्रकाश गुहा-कन्दराओं तक नहीं पहुँचा पाता, उसका प्रताप बादलों की ओट में छिप जाता है-इस प्रकार सूर्य की महिमा सीमित है और आपकी महिमा असीम है। अतः आपकी उपमा सूर्य से नहीं की जा सकती।

Scanned with CamScanner

(१८)

नित्योदयं दलित - मोह - महान्धकारं,
गम्यं न राहु - वदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति,
विद्योतयज्जगदपूर्व-शशाँक-बिम्बम्॥18॥

मोह-महा-तम नाशक पावन सदा उदय है आप स्वरूप।
राहु न बादल से छुपता है सदा स्वच्छ है रूप अनूप।।
शुद्ध कान्तिमय शान्त स्वरूपी तव छवि जग ज्योति पावन।
त्रिभुवन शिखर शिवं अनुपम हो शशिमण्डल सम मनभावन।।

ज्ञानचंद्र हो ज्ञान-दिवाकर ज्ञान-समुद्र ज्ञान-सम्पन्न।
सभी ज्ञानधारी हो जाते जो कल तक थे महा-विपन्न।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं अपूर्वचित्स्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१८।।

अन्वयार्थ-(भगवन्) हे जिनेन्द्र देव! **(तवमुखाब्जं नित्योदयं)** आपका मुख-मण्डल नित्य उदित रहने वाला विलक्षण चन्द्रमा है, जिसने **(दलित-मोह-महान्धकारं)** मोहरूपी अंधकार को नष्ट कर दिया है, **(अनल्प कान्ति)** जो अत्यन्त दीप्तिमान है, **(न राहु-वदनस्य गम्यं न वारिदानाम् गम्यम्)** जिसे न राहु ग्रस सकता है और न बादल छिपा सकते हैं तथा जो **(जगत् विद्योतयत्)** जगत को विशेषरूप से प्रकाशित करता हुआ **(अपूर्व-शशांक-बिम्बं विभ्राजते)** अलौकिक चन्द्रमण्डल की तरह सुशोभित होता है।

Scanned with CamScanner

(१९)

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमस्सु नाथ!।
निष्पन्न-शालि-वन-शालिनी जीव-लोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जल-भार-नम्रैः॥19॥

तव मुख अंधकार नाशक है सतत् अहर्निश विमल विकास।
सूर्य-चंद्र दोनों का यत्न नहीं कर सकता नाश प्रकाश।।
खेतों मे जब धान पक चुके धरती पर हो हरियाली।
गड़गड़ाट करते घन की क्या आवश्यकता गुणशाली।।

समवशरण महिमा से मण्डित दिवस रात्रि का भेद नहीं।
तुमको जाने बिना कभी भी होता यह भव छेद नहीं।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं मोहान्धकारनाशक श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।१९।।

अन्वयार्थ-(नाथ) हे स्वामिन्! **(युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु-तमःसु)** आपके मुख-रूपी चन्द्रमा के द्वारा मोहान्धकार नष्ट हो जाने पर **(शर्वरीषु शशिना किम्)** रात्रि में चन्द्रमा से क्या प्रयोजन? **(वा)** अथवा **(अह्नि-विवस्वता किम्)** दिन में सूर्य से क्या प्रयोजन? (जैसे कि) **(निष्पन्न-शालि-वन-शालिनी)** धान्य के वनों (खेतों) की फसल पक जाने पर अर्थात् परिपक्व अनाज से सुशोभित वनों (खेतों) के लिए **(जीव-लोक)** पृथ्वीतल पर **(जल-भार-नम्रैः जलधरैः कियत् कार्यम्)** पानी के भार से लदे हुए नीचे को झुके हुए बादलों से क्या प्रयोजन है।

Scanned with CamScanner

(२०)

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि॥20॥

स्व-पर प्रकाशक ज्ञान आपका जगती में अति शोभावान।
अन्य किसी भी देव आदि में ऐसा तेज नहीं बलवान।।
श्रेष्ठ रत्न का परम तेज ज्यों बहु महत्वशाली विख्यात।
कहीं कांच के टुकड़ों में क्या आ सकती है वैसी बात।।

महाप्रभापति परम तेजमय दिव्यज्योति के तुम स्वामी।
दर्पणवत् तुम जान रहे हो घट-घट को अन्तर्यामी।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं स्वपरप्रकाशस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२०।।

अन्वयार्थ-(कृतावकाशम्) अनन्त गुण-पर्यायात्मक पदार्थों को प्रकाशित करने वाला **(ज्ञानं यथा त्वयि विभाति)** केवलज्ञान जिस प्रकार आप में सुशोभित होता है **(तथा हरि-हरादिषु नायकेषु न एवम्)** वैसा हरि-हरादिक अर्थात् विष्णु-ब्रह्मा-महेश आदि लौकिक देवों में है ही नहीं। **(स्फुरन्मणिषु तेजः यथा महत्वं याति)** स्फुरायमान महारत्नों में जैसा तेज होता है **(किरणाकुलेऽपि काच-शकले तु न एवम्)** किरणों की राशि से व्याप्त होने पर भी काँच के टुकड़ों में तो वैसा तेज नहीं होता।

Scanned with CamScanner

(२१)

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोष-मेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ! भवान्तरेऽपि॥21॥

भला यही जो हरि-हर पहले देखे क्योंकि उसके बाद।
तुप्ति तुम्हीं से मिलती है प्रभु इसमें कोई नहीं विवाद।।
तुम्हें देख लेने पर कोई अन्य लुभा पाता न कभी।
यही लाभ है मुझे आपसे कहीं लाभ मिलता न कभी।।

अन्य न कोई देव आपके धरती पर है प्रभु समकक्ष।
शाश्वत तृप्ति प्रदाता स्वामी आप सातिशय हो प्रत्यक्ष।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं आनन्दामृतस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२१।।

अन्वयार्थ-(नाथ!) हे भगवन्! **(मन्ये)** मैं सोचता हूं कि **(हरि-हरादयः दृष्टाः)** विष्णु और महादेव आदि लौकिक देव हमारे द्वारा पहले देख लिए गये, पहचान लिए गये **(एवं वरम्)** यह अच्छा ही हुआ **(यतः)** क्योंकि **(येषु दृष्टेषु हृदयं त्वयि तोषं ऐति)** जिनके देख लेने पर हमारा हृदय आप में सन्तोष को प्राप्त हो जाता है। **(भवता वीक्षतेन किम्)** आपको पहले देखने से क्या लाभ था? **(येन भुवि अन्यः कश्चित्)** कि जिससे देखने पर भूमण्डल में अन्य कोई भी (देव) **(भवान्तरेऽपि मनो न हरति)** जन्म-जन्मान्तरों में भी मन को नहीं भाता अथवा हृदय को आकर्षित नहीं कर पाता।

Scanned with CamScanner

(२२)

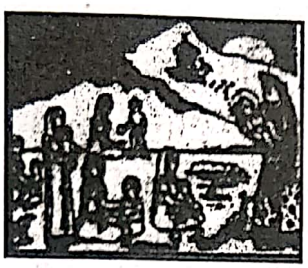

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम्।।22।।

शत-शत नारी शत-शत पुत्र जना करती हैं शत-शत ठौर।
तुम समान सुत नहीं जन सकी कोई नारी कभी न और।।
सर्व दिशाएं तारों को अपने भीतर रखने वाली।
पूर्व दिशा ही मात्र एक है दिनकर प्रगटाने वाली।।

योग्य पुत्र हो मात्र एक तो शत पुत्रों का क्या करना?
अपना शुद्धज्ञान गुण हो तो निश्चिय ही भवदुख हरना।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं अजन्मस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२२।।

अन्वयार्थ-(स्त्रीणां शतानि) सैकड़ों स्त्रियां **(शतशः पुत्रान् जनयन्ति)** सैकड़ों पुत्रों को जन्म देती हैं। (किन्तु) **(अन्या जननी)** आपकी माता के अतिरिक्त दूसरी मातायें **(तवदुपमम्)** आपके समान **(सुतं न प्रसूता)** पुत्र को उत्पन्न नहीं कर सकीं, नहीं जन सकीं। **(यथा)** जैसे **(सर्वाः दिशः भानि दधति)** सभी दिशायें नक्षत्रों-ताराओं को धारण करती हैं (किन्तु) **(प्राची दिग् एव)** केवल पूर्व दिशा ही **(स्फुरदंशुजालं सहस्ररश्मिं जनयति)** स्फुरायमान किरणों के समूहवाले सूर्य या दिनकर को जन्म देती है, उदित करती है; अन्य नहीं।

Scanned with CamScanner

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य-वर्णममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युम्,
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः॥23॥

सभी महामुनि तुम्हें मानते परम पुरुष स्वतेज धारी।
तुमको पाकर मृत्युंजय सम हो जाते शिव अधिकारी।।
मोक्षमार्ग दर्शाने वाले एक मात्र तुम ही जिनदेव।
अन्य विपर्यय मार्ग बताते भव में भटकाते वे देव।।

मुक्ति मार्ग के महाप्रणेता तुम ही करते मुक्ति प्रदान।
सारे भक्त बिना श्रम के ही कर लेते अपना कल्याण।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं मोक्षमार्गप्रकाशक श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२३।।

अन्यवार्थ-(मुनीन्द्र!) हे मुनियों के आराध्य, मुनिनायक! **(मुनयः)** मुनीजन, ज्ञानी पुरुष **(त्वाम्)** तुमको **(आदित्य वर्णम्)** सूर्य के समान दैदीप्यमान **(अमलम्)** दोष रहित, निर्मल **(तमसः परस्ताम्)** अज्ञान अन्धकार से परे **(परमं पुमांसम्)** परमपुरुष, लोकोत्तरपुरुष **(आमनन्ति)** मानते हैं, कहते हैं। (और) **(त्वामेव सम्यक् उपलभ्य)** तुमको ही भलीभांति भक्तिपूर्वक प्राप्त करके **(मृत्युं जयन्ति)** अपने जन्म मरण को जीतते हैं अर्थात् जन्म-मरण का अभाव करते हैं, **(यत्)** क्योंकि **(शिव-पदस्य अन्यः शिवः पन्थाः न)** मोक्षपद प्राप्त करने का दूसरा कोई प्रशस्त पथ नहीं है।

Scanned with CamScanner

(२४)

त्वामव्ययं विभुमचिन्तयमसंख्यमाद्यं,
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्ग - केतुम्।
योगीश्वरं विदित - योगमनेकमेकं
ज्ञान - स्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः॥24॥

अक्षय आद्य अनंत महाप्रभु एकानेक महायोगीश।
कामदेव सम ब्रह्म ईश्वर मुनिपति विदित योग शिवईश।।
पूर्णज्ञानमय हो जगदीश्वर त्रिभुवनपति जगनाथ महेश।
नाम अनन्त आपके स्वामी लेते हैं मुनिनाथ ऋषीश।।

तीन ज्ञान का धारी सुरपति नाम न ले पाता सम्पूर्ण।
मात्र एक सहस्रनाम जप वह थक कर हो जाता चूर्ण।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं सहस्रनामविभूषित श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२४।।

अन्वयार्थ-हे प्रभु! **(सन्तः)** सन्तजन, सज्जन पुरुष **(त्वाम्)** आपको **(अव्ययम्)** अव्यय, अक्षय **(विभुम्)** व्यापक, उत्कृष्ट विभूति से सुशोभित **(अचिन्त्यम्)** अचिन्त्य, मन के अगोचर **(असंख्यम्)** गणनातीत **(आद्यम्)** आदि तीर्थंकर **(ब्रह्माणम्)** आत्मलीन, सकल कर्मरहित सिद्ध परमेष्ठी या शुद्धात्मा **(ईश्वरम्)** सर्वशक्ति सम्पन्न **(अनन्तम्)** अनन्तगुण संयुक्त, अनन्त चतुष्ट्यधारक **(अनंङ्केतुम्)** काम के लिए केतु वत कामजयी या अशरीरी **(योगीश्वरम्)** मुनिनायक **(विदितयोगम्)** योगवेत्ता, रत्नत्रयरूप योग के ज्ञाता **(अनेकम्)** अनन्तगुण धारक, सहस्र नामों से स्तुति योग्य **(एकम्)** अद्वितीय **(ज्ञान स्वरूपम्)** ज्ञानमूर्ति, केवलज्ञान स्वरूपी **(अमलम्)** कर्ममल रहित त्रिकाल शुद्धस्वभावी आदि अनेक नामों से **(प्रवदन्ति)** सम्बोधित करते हैं, स्मरण करते हैं।

Scanned with CamScanner

(२५)

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित - बुद्धि - बोधात्,
त्वं शंकरोऽसि भुवन - त्रय - शंकरत्वात्।
धातासि धीर! शिव - मार्गविधेर्विधानाद्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि॥25॥

महापूज्य है ज्ञान आपका अतः बुद्ध कहलाते हो।
त्रिभुवन को अतिसुख-दाता हो शंकर शुद्ध कहाते हो।।
मुक्ति मार्ग के प्रमुख विधाता पुरुष पुरातन हो स्वामी।
तुम समान पुरुषोत्तम कोई कहीं नहीं जग में नामी।।

नाम अनन्त आपके स्वामी कहने में है कौन समर्थ।
एक नाम भी जो लेता है हो जाता वह महासमर्थ।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं अनघचित्स्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२५।।

अन्वयार्थ-(विबुधार्चित!) देवों, गणधरों एवं विद्वज्जनों द्वारा पूजित हे परमात्मा! **(बुद्धस्त्वमेव)** आप ही वास्तव में बुद्ध हो; **(बुद्धि-बोधात्);** क्योंकि आपने केवलज्ञान प्राप्त किया है अथवा **(विबुधार्चित बुद्धि बोधात् बुद्धस्त्वमेव्)** आपके केवलज्ञान की पूजा देवों, गणधरों द्वारा की गई है इसलिए आप ही वास्तव में बुद्ध हो। **(त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रय शंकरत्वात्)** तीनों लोकों को सुख शान्ति में निमित्त होने से तुम ही शंकर हो। **(धीर! शिव-मार्ग विधेः विधानात् त्वमेव धाता असि)** हे धैर्य धारक परमेश्वर! मोक्षमार्ग की विधि बतलाने वाले होने से आप ही विधाता हो, मोक्षरूपी सुख की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा हो। **(त्वमेव व्यक्तं पुरुषोत्तमः असि)** आप ही प्रगट पुरुषोत्तम (विष्णु) हो।

Scanned with CamScanner

(२६)

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ!
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन! भवोदधि-शोषणाय॥26॥

त्रिभुवन के दुख हर्त्ता स्वामी बारम्बार तुम्हें वन्दन।
भूषण हो इस भूमण्डल के आदिनाथ तुमको वन्दन।।
विश्वेश्वर त्रिभुवनपति स्वामी विनयपूर्वक बहुवन्दन।
भवसागर को सुखा दिया है भव्यों का तुमको वन्दन।।

अक्षय अव्यय अभय अनश्वर अविकारी प्रभु नित वन्दन।
वीतराग अरहन्त जिनेश्वर महापूज्य प्रतिपल वन्दन।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं त्रिभुवनवन्द्य श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२६।।

अन्वयार्थ-(नाथ!) हे नाथ! **(त्रिभुवनार्तिहराय)** तीनों लोकों की पीड़ा-व्यथा-वेदना-कष्ट को हरण करने वाले **(तुभ्यं नमः)** आपके लिए नमस्कार हो! **(क्षितितलामल भूषणाय तुभ्यं नमः)** आप ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक तथा अधोलोक के अमल-निर्मल-मनोज्ञ-पवित्र मंडन-अलंकार स्वरूप हो अतएव आपके लिए बारम्बार नमस्कार है। **(त्रिजगतः परमेश्वराय-तुभ्यं नमः)** आप त्रिभुवन के परमेश्वर हैं, जगदीश्वर हैं, प्रभु है अतः आपके लिए बारम्बार नमस्कार है **(जिन! भवोदधि-शोषणाय तुभ्यं नमः)** हे जिनेश्वर! आप भवरूपी समुद्र का शोषण करने वाले हो; अतः आपके लिए बारम्बार नमस्कार है।

Scanned with CamScanner

(२७)

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणै-रशेषैस्,
त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश।
दोषैरुपात्तविविधाश्रय - जात - गर्वैः,
स्वप्नोन्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि॥27॥

अखिल विश्व के सर्वगुणों ने शरण आपकी पायी है।
अन्य आश्रय मिला न उनको अद्भुत महिमा छायी है।।
देवों का आश्रय लेकर जो दोष गर्व में होते चूर।
झांक न सकते कभी आपको स्वप्न समान तनिक में चूर।।

प्रातिहार्य प्रभु अष्ट आपके महिमामयी महान विशाल।
अपने आप स्वतः आते हैं तुम ही हो त्रिभुवन के भाल।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं समस्तदोषरहित श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२७।।

अन्वयार्थ-(मुनीश!) हे मुनीश्वर! **(यदि नाम)** हमें ऐसा लगता है कि **(निरवकाशतया)** अन्यत्र आश्रय न पा सकने से **(अशेषैः गुणैः त्वं संश्रिता)** सभी गुणों ने आपका ही आश्रय ले लिया है तथा **(उपात्तविविधाश्रय-जात-गर्वैः दोषैः)** अनेक स्थानों पर आश्रय मिल जाने से जिन्हें घमण्ड हो गया है ऐसे दोष **(कदाचिदपि)** कदाचित् **(स्वप्नान्तरेऽपि)** स्वप्नावस्था में भी आपके पास **(न ईक्षितः असि)** दिखाई नहीं दें तो **(अत्र को विस्मयः)** इसमें क्या आश्चर्य? अर्थात् इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

Scanned with CamScanner

(२८)

उच्चैरशोकतरु - संश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त-तमो-वितानं,
बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति।।28।।

तरु अशोक है पृष्ठ भाग में हरित वर्ण निर्मल सुन्दर।
रूप आपका महा-मनोहर दीप्तिमान है भवतम हर।।
घन के निकट किरणपति दिनकर वितरण करता तेज प्रखर।
महा पर्वतों पर ज्यों दिपता दीप समान ज्योति लेकर।।

तव अशोक तरु जो भी लखता हो जाता है शोक रहित।
चाहे जैसा दुखिया हो प्रभु हो जाता है हर्ष सहित।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं अशोकवृक्ष प्रातिहार्यविभूषित श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२८।।

अन्वयार्थ-(उच्चैः अशोक तरुः संश्रितम्) अति उन्नत बहुत ऊँचे अशोकवृक्ष के आश्रय में विराजमान **(उन्मयूखम्)** ऊपर की ओर अपनी किरणों को बिखेरता हुआ **(भवतः अमलम्-रूपम्)** आपका उज्ज्वल रूप **(स्पष्टोल्लसत् किरणम्)** स्पष्ट रूप से ऊपर की ओर चमकती-दमकती हुई दीप्तमान किरणों वाला है, **(अस्त तमो-वितानम)** तथा समस्त अन्धकार समूह को अस्त करने वाला है। **(पयोधर पार्श्ववर्ति रवेः बिम्बं इव)** एवं सघन बादलों के समीप होने वाले सूर्यबिम्ब के समान **(नितान्तं आभाति)** अत्यधिक शोभायमान होता है।

Scanned with CamScanner

(२९)

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलता-वितानम्,
तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्त्र-रश्मेः॥29॥

रत्नजड़ित सिंहासन सुन्दर मणि मुक्ताओं से चित्रित।
स्वर्णकान्ति सम सदा चमकती देह आपकी बहु शोभित।।
उदयाचल से ज्यों निकला करता है रवि स्वतेज वाला।
सहस रश्मियां लेकर आता करता जग में उजियाला।।

सिंहासन से अंतरिक्ष चऊ अंगुल ऊपर रहे विराज।
त्रिभुवन की लक्ष्मी को तुमने ठुकराया है हे जिनराज।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं सिंहासन प्रातिहार्यविभूषित श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।२९।।

अन्वयार्थ-(मणि मयूख शिखा विचित्रे सिंहासने) मणियों की किरणों के अग्रभाग से विविध रंगवाले सिंहासन पर **(कनकावदातम)** स्वर्ण जैसा सुन्दर **(तव वपुः)** आपकी दिव्य देह या सुन्दर शरीर **(तुङ्गोदयाद्रि शिरसि)** उन्नत उदयाचल के शिखर पर **(वियद् विलसदंशु लता-वितानम्)** जिसकी किरणों का वल्लरि-विस्तार आकाश में शोभायमान हो रहा है-ऐसे **(सहस्र-रश्मेः)** सूर्य के **(बिम्बं इव विभ्राजते)** बिम्ब के समान सुशोभित हो रहा है।

Scanned with CamScanner

(३०)

कुन्दावदात-चल - चामर - चारु - शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम्।
उद्यच्छशाङ्क - शुचिनिर्झर - वारि-धार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्॥३०॥

चौंसठ चंवर नवल ढुरते हैं कुन्द पुष्प सम सुखदायी।
परमौदारिक देह आपकी शोभित है अमृत पायी।।
तुंग हिमाचल से जैसे निर्झर झरता है झर-झर-झर।
उछला करती चंद्र ज्योति जैसे उसके ही ऊपर।।

जैसे शुक्लध्यान अति-निर्मल तैसे चौंसठ चमर वितान।
तव तन प्रभा प्राप्त करके ही हो जाते हैं दिव्य महान।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं चतुःषष्ठि प्रातिहार्यविभूषित श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३०।।

अन्वयार्थ-(कुन्दावदात-चलचामर-चारु-शोभम्) कुन्द नामक सुमन के समान शुभ धवल, ढुलते हुए चंवरों से वृद्धिगंत हुई है शोभा जिसकी तथा **(कलधौत-कान्तम्)** स्वर्ण के समान है कान्ति जिसकी-ऐसा **(तव वपुः)** आपका शरीर **(उद्यच्छशांक-शुचिनिर्झरवारि-धारम्)** उदीयमान चन्द्रमा के समान-धवल-उज्ज्वल-श्वेत-शुभ्र जल प्रपात की धारा जहां गिर रही है-ऐसे निर्झर युक्त **(सुरगिरेः)** सुमेरुपर्वत के **(शातकौम्भम्)** स्वर्णिम् **(उच्चैः स्तटम् इव विभ्राजते)** उन्नत तटों के समान शोभा देता है।

Scanned with CamScanner

(३१)

छत्र-त्रयं तव विभाति शशाङ्क-कान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगित - भानु - कर - प्रतापम्।
मुक्ताफल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभम्,
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्।।31।।

शीश आपके छत्र तीन हैं दीप्तिमान त्रिभुवन के ईश।
चंद्रप्रभा भी लज्जित होती तव शोभा लख हे जगदीश।।
सूर्य प्रताप रोकते तीनों छत्र और करते जय घोष।
त्रिभुवनपति परमेश्वर तुम हो स्वतः अनंत गुणों के कोष।।

तीन लोक को जीत चुके हो अरु अलोक पर पायी जय।
विषद्ज्ञान के धारी जिनवर गुंजित त्रिभुवन में जय-जय।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं छत्रत्रय प्रातिहार्यविभूषित श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३१।।

अन्वयार्थ-(शशांक कान्तम्) चन्द्रमा के समान सुन्दर कान्ति युक्त **(मुक्तफल-प्रकर-जालविवृद्ध-शोभम्)** मणि-मुक्ताओं की झालरों से बढ़ गई है शोभा जिनकी-ऐसे आपके मस्तक पर लगे हुए-लटके हुए तीनों छत्र सुशोभित हो रहे हैं। तथा **(स्थगित-भानुकरप्रतापम्)** सूर्य की किरणों के आतप (प्रभाव) को रोकते हुए वे मानो **(त्रिजगतः)** तीनों लोकों के **(परमेश्वरत्वम्)** परमेश्वरपने को या प्रभुता को **(प्रख्यापयत्)** प्रगट करते हुए **(विभाति)** सुशोभित हो रहे है।

Scanned with CamScanner

(३२)

गम्भीर - तार - रवपूरित - दिग्विभागस्-
त्रैलोक्य-लोक-शुभ-सङ्गम-भूति-दक्षः।
सद्धर्मराज-जय-घोषण-घोषकः सन्,
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी॥32॥

देवों की भेरी बजती है तव गुण का करती जयगान।
दुन्दुभियाँ गगनाँगन होतीं सभी दिशा में एक समान।।
तीन लोक के सारे प्राणी शरण आपकी पाते हैं।
इन्द्रादिक सुर सारे नत हो सविनय शीष झुकाते हैं।।

साढ़े बारह कोटि प्रकार वाद्य बजते देवों द्वारा।
सप्त स्वरों की मंजुल ध्वनि सुन हर्षित हैं अपरम्पारा।।
भक्तमार का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं देवदुन्दुभि प्रातिहार्यविभूषित श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३२।।

अन्वयार्थ-हे भगवान्! **(गम्भीर-तार-रवपूरित-दिग्विभागः)** अपनी गम्भीर-स्पष्ट और मधुर ध्वनि से दिग्मण्डल को गुँजाता हुआ **(त्रैलोक्य-लोकशुभसंगमभूति-दक्षः)** तीनों लोकों के प्राणियों को सत्समागम का वैभव प्राप्त कराने की घोषणा करता हुआ **(सद्धर्मराज-जय-घोषण-घोषकः सन्)** समीचीन जिनधर्म एवं उसके प्रणेता तीर्थंकर देवों की जय जयकार करता हुआ **(दुन्दुभिः)** नगाड़ा **(ते)** आपके **(यशसः)** यश का **(प्रवादी)** विशद कथन करता हुआ **(खे)** गगन में **(ध्वनति)** गूंज रहा है।

Scanned with CamScanner

मन्दार - सुन्दर - नमेरु - सुपारिजात-
सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टि-रुद्धा।
गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्प्रयाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा॥३३॥

कल्पवृक्ष के पुष्प बरसते नभ से देवों के द्वारा।
गंधोदक की वर्षा होती प्रमुदित होता जग सारा।।
मंद सुगंध पवन बहती है नभ से शीतल सुखदायी।
प्रभा हीन शशि हो जाता सुन वचन आपके शिवदायी।।

नीर सुगंधित नभ से पाकर प्राणी प्रमुदित हो जाते।
मलय समीर निकट आता जब तब सब हर्षित हो जाते।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं पुष्पवृष्टि प्रातिहार्यविभूषित श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३३।।

अन्वयार्थ-(हे नाथ!) **(गन्धोदक-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्प्रयाता)** सुगन्धित जलकणों से सहित सुखद-मंगलीक मन्द-मन्दसमीर, धीमी-धीमी पवन के झोंकों के साथ गिरने वाली **(उद्धा दिव्या)** ऊर्द्धमुखी-उत्कृष्ट, मनोहर देवोपनीत-स्वर्गीय, **(मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपरिजात-सन्तानकादि)** मन्दार, सुन्दर, नमेरु पारिजात तथा सन्तानक आदि वृक्षों के **(कुसुमोत्कार)** सुमनों की **(वृष्टिः)** वर्षा **(दिवः पतति)** आकाश से गिरती है। **(वा)** तथा **(ते वचसां ततिः पतित)** आपके वचनों की पंक्ति अर्थात् दिव्यध्वनि खिरती है।

Scanned with CamScanner

(३४)

शुम्भत्प्रभा-वलय-भूरि-विभा विभोस्ते,
लोक-त्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकर - निरन्तर - भूरि - संख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम्।३४॥

तीनों लोकों की सब सुन्दरता यदि मूर्ति बनी आती।
सुछवि प्रभा मण्डल की सुन्दर देख-देख कर शरमाती।।
भामण्डल में भव्यजीव को दिखते अपने सातों भव।
तीन पूर्व के त्रय भविष्य के वर्तमान का एक सुभव।।

सप्त भवों को लखकर भविजन करते सप्त तत्त्व का ज्ञान।
भामण्डल सम स्वच्छ स्वरूपी चेतन रस का करते पान।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं भामण्डल प्रातिहार्यविभूषित श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३४।।

अन्वयार्थ-(विभोः ते) हे प्रभो! आपके **(शुम्भत्प्रभा-वलय-भूरि-विभा)** अत्यन्त शोभनीक प्रभामंडल की अतिशय जगमगाती ज्योति **(प्रोद्यद्दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या)** प्रकृष्ट रूप से उदीयमान असंख्य सूर्य को सघन-अविरल जगमगाती हुई तेजयुक्त कान्ति के सदृश है। **(लोक-त्रये द्युतिमतां द्युतिम्)** तीनों लोकों में जितने भी देदीप्यमान पदार्थ हैं उनकी द्युति को **(आक्षिपन्ती)** लज्जित करती हुई, तिरस्कृत करती हुई **(सोम-सौम्यामपि)** चन्द्रमा सदृश सौम्य-शीतल होने पर भी **(दीप्त्या)** अपनी कान्ति से **(निशामपि)** रात्रि को भी **(जयति)** जीतती है।

Scanned with CamScanner

(३५)

स्वर्गापवर्ग - गम - मार्ग - विमार्गणेष्टः,
सद्धर्म - तत्त्व - कथनैक - पटुस्त्रिलोक्याः।
दिव्य-ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः॥35॥

स्वर्ग मोक्ष का मार्ग बताते दिव्यवचन सुखदायी भव्य।
आत्म तत्त्व उपदेश दे रहे धर्म पंथ बतलाते सत्य।।
जिनको सुनकर भव्यजीव सब निज-निज उपादान अनुसार।
तव भाषा हृदयंगम करते इक दिन हो जाते भव पार।।

नाथ महाभाषा अष्टादश लघु भाषाएँ सात शतक।
गणधर झेल रहे दिव्यध्वनि करते हैं पुरुषार्थ अथक्।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं दिव्यध्वनि प्रातिहार्यविभूषित श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३५।।

अन्वयार्थ-हे जिनेन्द्र! **(ते दिव्य ध्वनिः)** आपकी अलौकिक वाणी **(स्वर्ग-अपवर्ग)** देवलोक व निर्वाणलोक को **(गममार्ग)** जाने के लिए **(विमार्गणेष्टः भवति)** अनुसंधान करने में अथवा मार्गदर्शन करने में अभीष्ट हैं, सहायक है। (तथा) **(त्रिलोक्याः)** तीनों लोकों को **(सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुः)** समीचीन धर्म-वस्तुस्वरूप या धर्म के तत्त्वों के प्रतिपादन करने में समक्ष है, निपुण है। (एवं) **(विशदार्थ-सर्व-भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणः प्रयोज्यः)** सम्पूर्ण द्रव्य-गुण-पर्यायों के और उनके भावों को प्रगट करने में सक्षम है और सर्वभाषा में परिणत होने की सामर्थ्य वाली होती है।

Scanned with CamScanner

(३६)

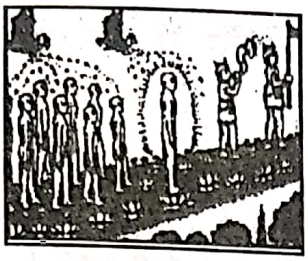

उन्निद्र - हेम-नव-पङ्कज-पुञ्ज-कान्ती,
पर्युलसन्नख - मयूख शिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति॥36॥

स्वर्ण कमल रचना होती है देवों द्वारा विविध प्रकार।
रवि सम जगमग आभा होती जब करते हैं आप विहार।।
तव चरणों के नीचे इनकी रचना होती अतिसुन्दर।
वन्दनीय चरणाम्बुज प्रभु के महामनोहर भव-तप हर।।

पन्द्रह कमलों की पन्द्रह पंक्तियाँ देव रच देते हैं।
दो शत अरु पच्चीस कमल प्रतिपल मन को हर लेते हैं।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं स्वर्णकमलरचना विभूषित श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३६।।

अन्वयार्थ-(जिनेन्द्र) हे जिनेन्द्र! **(तव पादौ)** आपके दोनों पग, युगल चरण **(उन्निद्र-हेम-नव-पंकज-पुंज-कान्ती)** खिले हुए नूतन स्वर्ण वर्ण के कमल समूह के समान कान्तिमान हैं। तथा **(पर्युल्लसन् नख-मयूख-शिखाभिरामौ)** सब और से फैलने वाली नाखूनों की किरणों की प्रभा से मनोहर हैं। (वे पद-युगल) **(यत्र पदानि धत्तः)** जहां-जहां पग (कदम) रखते हैं **(तत्र विबुधाः पद्मानि परिकल्पयन्ति)** वहाँ देवगण आगे-आगे स्वर्णवर्ण के कमलों की रचना करते जाते हैं।

Scanned with CamScanner

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र!
धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक्कुतो ग्रह-गणस्य विकासिनोऽपि॥37॥

धर्म-देशना नाथ आपकी लोकलोक जगत विख्यात।
अन्य किसी भी देवादिक में क्या ऐसी महिमा है ख्यात।।
घोर तिमिर नाशक सूरज के आगे नक्षत्रों की कान्ति।
नहीं देखने में आती है यदि आती है तो है भ्रान्ति।।

स्व-पर विवेक जगाने वाली दिव्यध्वनि जो सुन लेते।
बिना विलम्ब मुक्ति के पथ पर चरण स्वयं के धर लेते।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं अनुपमविभूति विभूषित श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३७।।

अन्वयार्थ-(जिनेन्द्र) हे जिनेश्वर! **(इत्थम्)** इसी प्रकार पूर्वोक्तानुसार समवशरण में विराजमान होकर **(धर्मोपदेशन-विधौ)** धर्मोपदेश की क्रिया करते समय **(यथा विभूति अभूत्)** जैसा ऐश्वर्य आपका था **(तथा परस्य न)** वैसा वैभव अन्य लौकिक देवों में नहीं पाया जाता। **(दिनकृतः प्रभा यादृक प्रहतान्धारा)** सूर्य की ज्योति कैसी अन्धकार की नाशक है **(तादृक् विकासिनः अपि ग्रह-गणस्य कुतः?)** कैसी ज्योति उदित हुए-टिमटिमाते तारागणों के पास कहाँ से हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती।

Scanned with CamScanner

(३८)

श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-
मत्त-भ्रमद्भ्रमद्-नाद-विवृद्ध-कोपम्।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्॥३४॥

मत्त गयंदों के मस्तक से ज्यों झरती है मद की धार।
जिस पर भंवरों की गुंजायमान होती है सतत् अपार।।
क्रोधित मत्त गयंद महा उद्धत आता जब बनकर काल।
तभी आपका आश्रय पाकर पाते भक्त सौख्य सुविशाल।।

अशुभ असाता तीव्र उदय में आकर जब करता क्रीड़ा।
आप कृपा से क्षय हो जाती आती फिर न कभी पीड़ा।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं अशरणशरण विभूषित श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।३८।।

अन्वयार्थ-(हे भगवान!) **(भवदाश्रितानाम्)** आपकी शरण में आये हुए आपके भक्तजनों को **(श्च्योतत्)** झरते हुए **(मद)** मदजल से **(आविल)** कलुषित-मलिन हुआ और **(विलोल)** चंचल **(कपोल-मूलम्)** गण्डस्थल प्रदेश (कनपटी) पर **(मत्त)** उन्मत्त-मदान्ध **(भ्रमद)** मंडराते हुए **(भ्रमर-नाद)** भौरों की गुन-गुनाहट से **(विवृद्ध)** बढ़ गया है **(कोपम्)** क्रोध जिसका-ऐसे **(ऐरावताभम्)** ऐरावत हाथी जैसे आकार वाले मोटे अथवा ऐरावत हाथी की तरह आभा वाले **(आपतन्तम्)** सामने आते हुए **(उद्धतम्)** उद्दण्ड, उच्छृंखल, **(इभम् दृष्ट्वा)** हाथी को देखकर भी **(भयं नो भवति)** भय उत्पन्न नहीं होता।

Scanned with CamScanner

भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त-
मुक्ता-फल-प्रकरभूषित-भूमि-भागः।
बद्ध-क्रमः क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते॥39॥

जैसे सिंह छलांग लगाकर क्षत-विक्षत करता गज शीष।
महा कान्तिमय गज मुक्तों से पट जाती धरती ज्यों ईश।।
तव चरणों की भक्ति प्राप्त कर भक्त सदा निर्भय होते।
सिंहों का आक्रमण न होता गिरि सम तुम रक्षक होते।।

तव भक्तों पर सिंह उपद्रव करने में क्यों हो सक्षम।
जिसने शरण आपकी पायी वह रक्षित हो गया स्वयम्।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं जगत्रातास्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३९।।

अन्वयार्थ-(भिन्नेभ-कुम्भ) भिन्न किये हुए अर्थात् विदारे हुए हाथी के गण्डस्थल से **(गलदुज्ज्वल)** निकल रहे धवल-श्वेत तथा **(शोणित-अक्त)** रक्त से लिप्त **(मुक्ता-फल-प्रकर)** गजमोतियों के समूह से **(भूषित)** सुशोभित कर दिया है **(भूमि-भागः)** पृथ्वी का भाग जिसने-ऐसे **(बद्ध-क्रम)** अपने पराक्रम को समेटकर आक्रमण करने के लिए कटिबद्ध छलांग मारता हुआ **(हरिणाधिपः अपि)** सिंह भी **(क्रम-गतम्)** अपने पंजों के बीच पड़े हुए, **(ते)** आपके **(क्रम-युगाचल-संश्रितम्)** चरण-शरण में आये हुए भक्त पर **(नाक्रामति)** आक्रमण नहीं करता है। हिसंक, क्रूर, शिकर करने को उद्यत सिंह भी आपके भक्त के समक्ष अपनी नैसर्गिक क्रूरता को भी छोड़ देता है।

Scanned with CamScanner

(४०)

कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं,
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम्।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं,
त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम्॥40॥

प्रलय पवन उड़ चारों दिशि में अग्नि भयंकर करती है।
अंगारों की महा भयंकर वर्षा भीषण करती है।।
तीनों भुवन जला दे ऐसी अग्नि निगलने को आती।
नाम आपका लेते ही वह स्वयं स्वतः ही बुझ जाती।।

छोटी सी चिंगारी वन-उपवन-नगरी कर देती भस्म।
निर्भय भक्त आपका रहता उसे न करता कोई भस्म।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं विभाव अग्नि शामक श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४०।।

अन्वयार्थ-(त्वन्नाम-कीर्तन-जलम्) आपके नाम के स्मरण रूपी जल से **(कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पम्)** प्रलयकाल की महावायु के तेज झकोरों से उत्तेजित हुई-धधकती हुई प्रचण्ड आग के समान **(ज्वलितम्)** जलती हुई **(उज्वलम्)** निर्धूम **(उत्स्फुलिंगम्)** चारों ओर फेंकती हुई चिन्गारियों से युक्त **(विश्वम्)** संसार को **(जिघत्सुमिव)** मानों निगल लेगी, इस तरह **(सन्मुखं-आपतन्तम्)** सम्मुख आती हुई **(दावानलम्)** दावानल को **(अशेषम् शमयति)** पूरी तरह से शान्त कर देता है। अर्थात् प्रलयकाल की तरह भयंकर आग को भी शमन करने के लिए आपका नाम स्मरण जल के समान है।

Scanned with CamScanner

रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्।
आक्रामति क्रम - युगेण निरस्त - शङ्क-
स्त्वन्नाम-नाग-दमनी हृदि यस्य पुंसः॥41॥

कोकिल कंठ समान सर्प अतिकृष्ण नेत्र जिसके हों लाल।
फनफनाट जिसके फण करते महा भयानक हो विकराल।।
नाग दमन तव नाम आपका जो भी लेता भली प्रकार।
वह निशंक हो नाग शीष पर पग रख करता अभय विहार।।

क्रूर सर्प भी तव भक्तों को डंसने में है नहीं समर्थ।
भक्त आपका स्वयं शक्तिशाली हो जाता पूर्ण समर्थ।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं मरणभयविनाशक श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४१।।

अन्वयार्थ-(यस्य पुंसः हृदि) जिस पुरुष के हृदय में **(त्वत् नाम-नाग-दमनी)** आपके नामरूपी नाग-दमनी है, **(सः निरस्त शंकः)** वह भय या शंका से रहित होकर निर्भयता से **(रक्तेक्षणम्)** रक्तवर्ण के नेत्रों वाले **(समद)** उन्मत्त, **(कोकिल-कण्ठ-नीलम्)** कोयल की ग्रीवा समान काले **(क्रोधोद्धतम्)** क्रोध से उद्दण्ड अर्थात् अत्यन्त क्रोधित **(आपतन्तम्)** सामने आते हुए **(उत्फणम्)** ऊपर की ओर फण उठाये हुए **(फणिनम्)** सर्प को भी **(क्रमयुगेन्)** दोनों पैरों से **(आक्रामति)** लाँघ जाता है।

Scanned with CamScanner

(४२)

वल्गत्तुरंग - गज - गर्जित - भीमनाद-
माजौ बलं बलवतामरिभूपतीनाम्।
उद्यद्दिवाकर - मयूख - शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति।।42।।

शूरवीर सम्राटों की सेनाओं का घन गर्जन शोर।
सुनकर आगे बढ़ने वाला चीत्कार हो चारों ओर।।
एक व्यक्ति जो भक्त आपका विनय पूर्वक ले यदि नाम।
शूरवीर सेनाओं तक पर जय पा लेता है अविराम।।

नाथ आपकी भक्ति भक्त को अतुलित बल प्रदान करती।
त्रिभुवन को जय करने वाली शक्ति उसे शोभित करती।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं मोहशत्रु विनाशक श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४२।।

अन्वयार्थ-(त्वत्कीर्तिनात्) आपके नाम के कीर्तन से या आपका स्मरण करने मात्र से **(आजौ)** संग्राम में जहाँ **(वल्गत् तुरंग गजगर्जित भीमनादम्)** उछल-उछलकर हिनहिनाते हुए घोड़ों और गर्जना करते हुए हाथियों की भयंकर आवाज हो रही है, जिसमें ऐसी **(बलवताम्)** पराक्रमी, शक्तिशाली सेनाओं से युक्त **(अरिभूपतीनाम्)** शत्रु राजाओं की **(बलम्)** सेनायें **(उद्यद्दिवाकर-मयूख-शिखापविद्धं)** उदीयमान सूर्य की किरणों के अग्रभाग से भेदे गए **(तव इव)** अन्धकार की तरह **(आशु)** शीघ्र **(भिदामुपैति)** विनाश को प्राप्त होती है।

Scanned with CamScanner

कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह-वेगावतार - तरणातुर - योध - भीमे।
युद्धे जयं विजित - दुर्जय - जेय - पक्षा-स्त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणो लभन्ते॥43॥

महा भयंकर युद्ध क्षेत्र में रुधिर समुद्र बहे दिन-रात।
बड़े-बड़े योद्धा खा जाते ऐसे महायुद्ध में मात।।
किन्तु आपका भक्त नाम ले जपता है जब तुम को ईश।
तव चरणों का आश्रय पाकर जय पाता है हे जगदीश।।

आप कृपा से भक्त आपका त्रिभुवन में विजयी होता।
वसुकर्मों को इक मुहूर्त में जयकर जगज्जयी होता।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं त्रिभुवनजयप्रदायक श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४३।।

अन्वयार्थ-(त्वत्पाद-पंकज-वनाश्रयिणो) आपके चरणकमल रूपी उपवन का आश्रय लेने वाले भव्यजीव **(कुन्ताग्र)** भाला के नुकीले भाग से **(भिन्न)** भेदित हुए-क्षत-विक्षत हुए **(गज-शोणित-वारिवाह)** हाथियों के रक्तरूपी जलप्रवाह में **(वेगावतार-तरण-आतुर)** तेजी से उतरने में तथा तैरने में उतावले **(योध)** योद्धाओं से युक्त **(भीमे)** भयंकर **(युद्धे)** युद्ध में **(विजित-दुर्जय-जेय-पक्षाः)** कठिनता से जीता जा सके ऐसे शत्रुपक्ष को भी **(जयं लभन्ते)** आसानी से जीत लेते हैं।

Scanned with CamScanner

(४४)

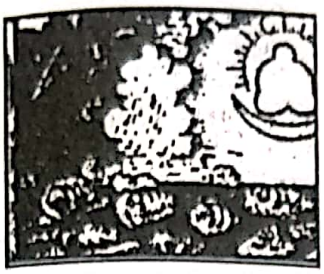

अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र-पाठीन-पीठ-भय-दोल्वण-वाड़वाग्नौ।
रंगतरङ्ग-शिखर-स्थित-यान-पात्रा-स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति॥44॥

मच्छ मगर घड़ियाल युक्त सागर में जब उठता तूफान।
उठती है उत्ताल तरंगें तथा डूब जाते बहुयान।।
महा भयंकर चक्रवात में फँसा भक्त का हो जलयान।
नाम आपका लेते ही हो जाता उसका दुख अवसान।।

भव दुख सागर के तूफानों को कर देता क्षण में नष्ट।
भक्त आपका बल अनन्त पा पाता गुण समुद्र उत्कृष्ट।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं भवसागर शोषक श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४४।।

अन्वयार्थ-(भीषण-नक्र-चक्र-पाठीन-पीठ) भयंकर मगरमच्छ एवं घड़ियालों और पाठीन नामक भीमकाय मत्स्यों से **(क्षुभित)** आन्दोलित **(अम्भोनिधौ)** सागर में **(क्षय-दोल्लवण-वाड़वाग्नौ)** (जिसमें) भयंकर-विलक्षण बड़वानल सुलग रहा हो (ऐसे) **(रंगतरंग-शिखर-स्थित)** तीव्रता से उछलती-लहराती हुई लहरों के ऊपरी सतह पर स्थित डग-मगाते हुए **(यान-पात्राः)** जहाज के पुरुष **(भवतः स्मरणाद्)** आपके स्मरण करने से **(त्रासं विहाय)** दुःख से मुक्त होकर **(व्रजन्ति)** आगे बढ़ जाते हैं।

Scanned with CamScanner

उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः,
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत-जीविताशाः।
त्वत्पाद - पङ्कज - रजोमृत - दिग्ध - देहा,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्यरूपाः॥45॥

महा-भयंकर रोग जलोदर अर्बुद आदिक हो उत्पन्न।
असहनीय पीड़ा से पीड़ित भक्त आपका मराणासन्न।।
नाम आपका लेते ही प्रभु स्वास्थ्य लाभ वह पाता है।
तव पद रज संजीवन पाकर कामदेव बन जाता है।।

बाह्यरोग तन-दुखदायी है अंतरंग भव-दुखदायी।
जन्मादिक त्रय रोग नष्ट करता तव भक्त ज्ञानपायी।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं निरामयस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४५।।

अन्वयार्थ-(उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः) उत्पन्न हुए भयंकर जलोदर रेाग के भार से टेडी हो गई है कमर जिसकी तथा **(शोच्यां दशामुपगताः)** शोचनीय, दयनीय दशा को प्राप्त हो गया है जो एवं **(च्युत-जीविताशाः)** छोड़ दी है जीवन की आशा जिसने- ऐसा **(मर्त्या)** मनुष्य भी जब है भगवन्! **(त्वत्पाद-पंकज-रजोमृत-दिग्ध देहा)** आपके पाद पद्मों की रज **(धूलि)** रूपी अमृत से अपने शरीर को लिप्त कर लेता है तो वह मनुष्य **(मकरध्वज-तुल्यरूपाः)** कामदेव के समान सुन्दर रूप वाला **(भवन्ति)** हो जाता है।

Scanned with CamScanner

(४६)

आपाद-कण्ठमुरु-शृङ्खल-वेष्टिताङ्ग,
गाढ़ं बृहन्निगड - कोटि - निघृष्ट - जङ्घाः।
त्वन्नाम मन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भय भवन्ति॥46॥

लौह श्रृंखला से जकड़ी हो जिनकी देह बहु कसकर।
बेड़ी से जंघाएँ छिलती हों अधीर हो यदि वह नर।।
ऐसा बंदी नाम आपका लेकर होता बंधन मुक्त।
महा-महिम भगवान आपकी कृपा परम से होता युक्त।।

भव-कारागृह का बंदी भी जब लेता है प्रभु का नाम।
बन्दीगृह से बाहर आता पाता है क्षण में ध्रुवधाम।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं बन्धछेदकस्वरूप श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४६।।

अन्वयार्थ-(आपाद-कण्ठम्) वरणों से लेकर ग्रीवा तक **(उरु-शृंखल-वेष्टिताङ्ग)** बड़ी-बड़ी मजबूत सांकलों से जकड़ दिया है-कस दिया है अंग-अंग जिसका, **(गाढम्)** अत्यधिक मजबूत रूप से **(बृहन्निगड़-कोटि-निघृष्ट-जंघा)** बड़ी-बड़ी लोह श्रृंखलाओं के अग्रभाग से रगड़कर छिल गई हैं जांघें जिसकी, **(मनुजाः)** वह मनुष्य **(त्वन्नाम मन्त्रम्)** आपके नामरूपी मंत्र को **(अनिशम् स्मरन्तः)** स्मरण करने से, जपने से **(सद्यः)** तत्काल **(स्वयं)** अपने आप **(विगत बन्ध-भया भवन्ति)** बन्धन के भय से मुक्त हो जाता है।

Scanned with CamScanner

मत्तद्विपेन्द्र - मृगराज - दवानलाहि-
सङ्ग्राम - वारिधिमहोदर - बन्धनोत्थम्।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते॥47॥

सिंह सर्प गज युद्ध भयंकर दावानल या बड़वानल।
इनसे भी अति-भीषण दुक्खों का हो जाता नाश सरल।।
नहीं भयातुर हो सकता है भक्त आपका किसी प्रकार।
निश-दिन नाथ आपको जपनेवाला हो जाता भव पार।।

भक्त आपका विनयपूर्वक नाम अगर जप लेता है।
कर्म-बंध के कष्ट अनन्तों पल भर में हर लेता है।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं सर्वदुःख विनाशक श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४७।।

अन्वयार्थ-(यः मतिमान) जो बुद्धिमान पुरुष **(तावकं इमम्)** आपके इस **(स्तवम्)** स्तोत्र को **(अधीते)** पढ़ता है, पाठ करता है **(तस्य)** उसका **(मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज)** मदोन्मत्त हाथी, सिंह तथा **(दवानलाहि सङ्ग्राम-वारिधिमहोदर-बन्धनोत्थम्)** दावानल, सर्प, संग्राम, सागर, जलोदर तथा बन्धन से **(उत्थम्)** उत्पन्न हुआ **(भयं)** डर **(भियेव)** मानो डर के कारण से ही **(आशु नाशं उपायाति)** शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाता है।

Scanned with CamScanner

(४८)

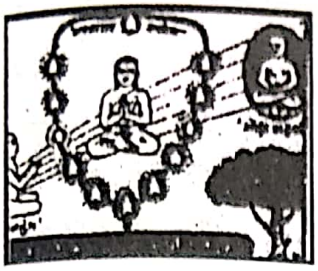

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र! गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठ गतामजस्रं,
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः।।48।।

तव गुण उपवन से लाया हूं चुन-चुन कर कुछ सुमन प्रभो।
विविध वर्ण की माला गूंथी तुम्हें चढ़ायी महा-विभो।।
श्रद्धा पूर्वक भक्त जीव जो कंठाभरण बना लेते।
मानतुंग का कथन यही वे मोक्ष-लक्ष्मी पा लेते।।
शक्ति अनन्तानन्त आपके द्वारा हो जाती हैं प्राप्त।
गुण अनन्त भी अन्तर्नभ में आकर होते स्वतः व्याप्त।।
पारस तो केवल लोहे को सोना करने में सक्षम।
किन्तु आप तो भक्त जनों को कर लेते हो अपने सम।।
अभिनव भक्तिभाव की गंगा अन्तर में लहरायी है।
निश्चित ही प्रभु स्वगति प्राप्त करने की बेला आयी है।।
मैं भी कंठाभरण बनाऊँ तुम गुण मणिमाला नामी।
निश्चित मुक्ति-लक्ष्मी पाऊँ यही भावना है स्वामी।।
भक्तामर का पाठ करूँ मैं मोह-राग-द्वेषादि हरूँ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ निज ध्रुवधाम वरूँ।।

ॐ ह्रीं अनन्तगुण विभूषित श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।४८।।

अन्वयार्थ-(जिनेन्द्र) हे जिनेन्द्र भगवन्! **(इह)** इस लोक में **(यः जनः)** जो पुरुष **(भक्त्या)** भक्तिपूर्वक **(मया)** मेरे द्वारा **(तव गुणैः निबद्धम्)** आपके गुणों से गूँथी गई, बनाई गई **(रुचिर-वर्ण-विचित्र पुष्पाम्)** मनोहर स्वर-व्यंजन वर्णों के यमक-श्लेष-अनुप्रासादि अलंकार रूप विविध सुमनों की **(स्तोत्रस्रजं)** आदिनाथ स्तोत्ररूपी माला को **(अजस्रम्)** सदैव **(कण्ठ-गतां धत्ते)** कण्ठस्थ करता है, गले में धारण करता है **(तं मानतुंग)** उस प्रतिष्ठा प्राप्त महापुरुष को, स्वाभिमानी समुन्नत पुरुष को भक्तामर के द्वारा आदिनाथ के स्रोता श्री मानतुंगाचार्य को **(लक्ष्मी)** मोक्ष लक्ष्मी **(अवशास-मुपैति)** विवश होकर वरण करती है अर्थात् स्वयमेव प्राप्त होती है।

Scanned with CamScanner

चूलिका

(वीर)

कल्पादिक सुर शीष झुकाते ज्योतिष मण्डल गाता गीत।
व्यन्तर भवनवासी नाचते जागी उर में प्रभु की प्रीत।।
धरती नाच-नाच उठती है गगनांगन पाता निज मीत।
शुद्ध आत्मा अनात्मा के दुर्गुण से जाता है रीत।।
लोकालोक यशोध्वज लहराता है बिना पवन गतिमान।
सादि अनन्तानन्त काल त्रिभुवन गाता है जय-जय गान।।
सकल सुरासुर त्रिभुवन वन्दित तीर्थंकर श्री ऋषभ महान।
आप कृपा से सभी भक्तजन सुखी बनेंगे पा निर्वाण।।
मैंने भी प्रभु भक्ति भाव से भक्तामर का किया विधान।
स्व-पर विवेक जगा अन्तर में प्रगटा भेदज्ञान-विज्ञान।।
मानो सम्यग्दर्शन पाया पाया प्रथम मुक्ति सोपान।
रत्नत्रय रथ आया द्वारे मुक्तिमार्ग पर किया प्रयाण।।
भक्तामर विधान करके मैं राग-द्वेष का करूँ विनाश।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित प्रगटाऊँ पाऊँ आत्म-प्रकाश।।

ॐ ह्रीं त्रिभुवनवन्द्य श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।।

समुच्चय जयमाला

(चौपाई)

आदिनाथ अविकल अविनाशी। राग द्वेष परभाव विनाशी।
कर्मभूमि के प्रथम जिनेश्वर। परम पवित्र पूज्य तीर्थंकर।

नाभिराय मरुदेवी नंदन। नगर अयोध्या जन्मे भगवन।
सुरपति ऐरावत पर आया। गिरि सुमेरु अभिषेक रचाया।

राज्य अवस्था में सुख पाये। असिमसिकृषिवाणिज्यसिखाये।
मति-श्रुत-अवधिज्ञान के धारी। पावनपूज्य सुयशविस्तारी।

Scanned with CamScanner

नीलांजना मरण को लखकर। उर छाया वैराग्य सुहितकर।
लौकान्तिक देवों ने आकर। तप कल्याण किया हर्षाकर।

स्वयं दीक्षित नाथ हुए तुम। निजस्वरूप के साथ हुए तुम।
शुक्लध्यान धर केवल पाया। पूर्णज्ञान का रवि मुस्काया।।

लोकालोक ज्ञेय के ज्ञायक। परम अतीन्द्रिय सौख्य प्रदायक।
मोक्षमार्ग का कर उद्घाटन। किये असंख्य भव्यजन पावन।

चौरासी गणधर के नायक। स्याद्वाद के नाथ विधायक।
मुक्त हुए कैलाश शिखर से। इन्द्रादिक सुर नर सब हरषे।

सिद्ध शिला पर आप विराजे। गुण अनंत प्रगटाकर साजे।
अतुल अनादि अनंत अकामी। परम सिद्ध प्रभु शिवपुर धामी।

हे प्रभु मेरे अन्तर्यामी। मेरी विनय सुनो हे स्वामी।
सब प्रकार के संकट हर लो। निज समान मुझको भी कर लो।

परिणामों में उज्ज्वलता हो। लेश न भव की चंचलता हो।
निर्मल निश्चल निज को ध्याऊँ। प्रभु अरहंत अवस्था पाऊँ।

ॐ ह्रीं श्री पंचकल्याणक विभूषित आदिनाथ जिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय महार्घ्य

(दोहा)

भक्तामर जिन काव्य को, वन्दन शत-शत बार।
मानतुंग को नमन कर, पाऊँ ज्ञान अपार।।

(समान सवैया)

ऋषभ जिनेश्वर आदिनाथ प्रभु वृषभदेव को सादर वंदन।
ध्यानमात्र से भक्त जनों के मिट जाते हैं भवदुख क्रन्दन।।

नाभिराय चौदहवें कुलकर माता मरुदेवी के नंदन।
आदि ब्रह्म आदीश्वर स्वामी महादेव भवताप निकंदन।।

Scanned with CamScanner

त्रिभुवन वंदित सकल सुरासुर पूजित जिनपति जगदानंदन।
शत इन्द्रों से पूज्य महीपति शाश्वत शिव आनंदानंदन।।
कर्मभूमि में प्रथम आपने धर्मचक्र का किया प्रवर्तन।
वीतराग सर्वज्ञ ध्यानमय दर्शन-ज्ञान चेतना लक्षण।।

प्रथम तीर्थंकर जिनेन्द्र प्रभु वृषभ चिन्ह लक्षण आनंदघन।
सर्वज्ञेय पति ज्ञाता-दृष्टा मेरे भी दुख नाशो भगवन।।
हे विकटेश्वर हे परमेश्वर हे जगदीश्वर चिन्मय चिद्घन।
संकटहारी मंगलकारी भवदुख हर्ता सहजानंदन।।

मन-वच-काय त्रियोगपूर्वक भाव अर्घ्य करता हूँ अर्पण।
भेदज्ञान-विज्ञान ज्योति पा करूँ निजातम का अभिनन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्ति पाठ

सुख शान्ति पाने के लिए पुरुषार्थ प्रभु मैंने किया।
श्रेष्ठ भक्तामर विधान महान प्रभु मैंने किया।।

अब नहीं चिन्ता मुझे है न कभी होऊँगा अशान्त।
आज मैंने स्वतः पाया ज्ञान का सागर प्रशान्त।।

विश्व के प्राणी सभी चिरशान्ति पायें हे प्रभो।
मूलभूल निजात्मा का ज्ञान ही पायें विभो।।

मूलभूल विनष्ट करके नाथ मैं ज्ञानी बनूँ।
भक्ति रत्नत्रय हृदय हो पूर्णतः ध्यानी बनूँ।।

क्षमापना पाठ

भूल चूक कर दो क्षमा, हे त्रिभुवन के नाथ।
आप कृपा से हे प्रभो, मैं भी बनूँ स्वनाथ।।
अल्प नहीं है हे प्रभो, पूजन विधि का ज्ञान।
अपना सेवक जानकर, क्षमा करो भगवान।।

।।पुष्पांजलिं क्षिपामि।।

Scanned with CamScanner